श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् द्वारा प्राक्कथन सहित

गान्धी-गीता

अथवा

अहिंसा-योग

(महात्मा गान्धी के अहिंसा-सम्बन्धी विचारों का विशदीकरण)

लेखक

प्रो० इन्द्र एम० ए० (राजनीतिशास्त्र तथा संस्कृत)

शिमला म्युनिसिपल कालेज

शिमला

अनुवाद-लेखिका

कमलावती 'विशारदा'

Approved for Library and Prize books for Schools by D P. I. Punjab, his letter No. 2471-3/108-56-B-32568 D/ 6th June 1957

राजहंस प्रकाशन दिल्ली

१६४६]

[मूल्य २)

By the same Author :

1. The status of women in ancient India,
   with a foreword by Mrs Vijaya Lakshmi Pandit.
2. War and peace in ancient India.
3. Economic thought in Ancient India.
4. Cultural renaissance in India.
5. Ahimsa yoga or Shri Man-Mohan-Gita,
   (Hindi & English Version)
   with a foreword by Dr, S. Radha Krishnan.

प्रकाशक : राजहंस प्रकाशन, दिल्ली
मुद्रक : राजहंस प्रेस, दिल्ली

प्राक्कथन

(श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्)

प्रोफेसर इन्द्र ने अपनी पुस्तक श्री-मोहन-गीता अथवा अहिंसा-योग में सरल संस्कृत पद्यों मे गाधीजी की मुख्य-मुख्य शिक्षाओं का वर्णन किया है। गाधी जी ने हमे सभ्यता के इतिहास मे, एक नवीन मार्ग का प्रदर्शन कराया है, जो हमारे देश की गौरवमयी सास्कृतिक परम्पराओं के अनुकूल है। हमारे आधुनिक युग को यदि बर्बरता से मुक्त होना है, तो उसे अहिंसा के मार्ग का आश्रय लेना ही होगा। इसका अर्थ यह नही, कि हमें अन्याय तथा बुराई के सामने सिर झुका देना चाहिए। धर्म, यदि सत्य पर अवस्थित हो, अपने को सामाजिक प्रक्रिया में प्रकाशित करता है। यह अत्याचार, अन्याय तथा अधिकार का शत्रु है। और यह उन पर धैर्य, सहिष्णुता, त्याग एव वलिदान से विजय प्राप्त करता है।

गान्धी का सन्देश है—बुराई का मुकाबला आत्म-यातना से करो। उसने देश के निर्धन लोगों को दासता से मुक्त कराने के लिए, इस मंत्र का प्रयोग किया। मनुष्य जाति का पाचवा भाग सामाजिक उन्नति, राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा अन्तर्जातीय समानता को प्राप्त करने के लिए सङ्घर्ष कर रहा था। गान्धी के आने से पूर्व, भारतवर्ष मे राष्ट्रवाद केवल पढे लिखे लोगो तक अथवा मध्यमश्रेणी तक सीमित था। इस की जड़ें सर्व साधारण जनता तक नहीं पहुँची थी। आज यह राष्ट्रवाद एक प्रचण्ड एव व्यापक आन्दोलन बन चुका है। अशिक्षित किसानों एवं श्रमजीवियों तक भी वह ओत-प्रोत हो चुका है। गान्धी के लिए स्वतन्त्रता का अर्थ केवल राजनीतिक शृङ्खलाओं का तोड़ना-मात्र नहीं, इसका अर्थ तो एक नए जीवन मे प्रवेश करना है, जिसमें एक महान् क्रांति का प्रारम्भ होता है और सब प्रकार के मानवीय अत्याचारों का अन्त होता है। इसका अर्थ है, कठोर

नियन्त्रण, नवीन शिक्षण, ईश्वर-भजन तथा निःस्वार्थ लोकाराधन। मुझे गान्धी मुख्यतया एक धार्मिक आचार्य प्रतीत होते हैं, जो जैसा विश्वास करते हैं, वैसा कहते हैं और जैसा कहते हैं, वैसा ही आचरण करते हैं।

यह रुचिकर तथा मनोहर ग्रन्थ, गांधी जी की शिक्षाओं के सम्बन्ध में, बढ़ते हुए साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण अभिवृद्धि है।

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट –

महात्मा मोहन

देश दारिद्र्यसन्ताप-विदीर्णहृदयो यती।
तपःकृशशरीरेण, देशदुःखं प्रकाशयन् ॥

देश की दरिद्रता के सन्ताप से विदीर्ण हृदय वाला, यती तपः कृश शरीर से देश के दुःख को प्रकाशित करता हुआ।

विश्वकल्याणचिन्तायां, शाश्वतं मग्नमानसः।
दूरदर्शी मुनिः कश्चित्, त्रिदिवागतदेवता ॥

विश्व-कल्याण की चिन्ता में निरन्तर मग्नमन वाला, दूरदर्शी, कोई देवता स्वर्ग से भटक कर आया हुआ।

सेवाधर्ममनासक्ति-योगं कर्मार्चनाविधिम्।
दीनार्तिनाशनं मोक्ष-साधनं बोधयन्नथ ॥

सेवा-धर्म, अनासक्ति योग, कर्म-मार्ग द्वारा पूजा के मार्ग को, दीनों के दुःख-निवारण को, मोक्ष का साधन बतलाता हुआ।

भगवान् वासुदेवोऽन्यो ऽवतीर्ण इव भारते।
महात्मा मोहनो गान्धी-नामा-विश्वविमोहनः ॥

दूसरा भगवान् कृष्ण भारत वर्ष में अवतार ग्रहण किये हुए महात्मा मोहन (दास) गाधी नाम वाला, विश्व को मोहने वाला।

समुद्धाराय दीनानां, स्वातन्त्र्यास्थापनाय च।
विश्वप्रेमप्रसाराय, सम्भूतः सोऽधुना युगे ॥

दीनो के उद्धार के लिए, स्वतन्त्रता की स्थापना के लिए, विश्व-प्रेम का प्रसार करने के लिए, वह अब इस युग मे उत्पन्न हुआ।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्प्यते ।
'तेरी वस्तु गोविन्द, तुझे ही समर्पित है।'

इन्द्र

विषय-प्रवेश

अहिंसायोग अथवा श्रीमन्मोहन-गीता गान्धी जी के अहिंसासम्बन्धी विचारों का विशदीकरण है। इसकी शैली श्रीमद्-भगवद्-गीता की है। इसमे १८ अध्याय हैं और लगभग ७०० श्लोक।

गुरुदेव (रवीन्द्रनाथ टैगोर) दीनबन्धु (एण्ड्रूज़) से पूछते हैं कि भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम मे, किन-किन वीरों ने भाग लिया और किस सेनानायक ने विशेष रूप में इस महान् युद्ध का सञ्चालन किया ?

दीनबन्धु, प्रथम अध्याय में, इस स्वतन्त्रता-संग्राम की संक्षेप से चर्चा करते हैं और बतलाते हैं कि दादाभाई नौरोजी, गोखले, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, लोकमान्य तिलक, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, मोतीलाल नेहरू, पञ्जाबकेसरी लाजपतराय, महामना मदनमोहन मालवीय, नेता जी सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, तथा सर्वोपरि महात्मा गान्धी इस स्वाधीनता-युद्ध के महारथी थे। गान्धी जी के सेनापतित्व में राजगोपालाचार्य, राजेन्द्रप्रसाद, सरोजिनी, विजयलक्ष्मी, आज़ाद, मुन्शी, जमनालाल, खेर, पन्त, शुक्ल आदि अन्य वीरों ने भी इस स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया।

द्वितीय अध्याय मे, राजेन्द्र (प्रसाद) सेनानायक मोहन (मोहनदास कर्मचन्द गान्धी) के समीप चम्पारण-रणस्थल मे आकर, अहिंसा-सिद्धान्त की, देश की स्वतन्त्रता के लिए तथा विश्व-शान्ति की स्थापना के लिए, उपयोगिता पर सन्देह प्रकट करते हैं। उनके इस भ्रम का निवारण करने के लिए, श्री मोहन (गान्धी) इस गीता का उपदेश प्रारम्भ करते हैं, और अहिंसा के दार्शनिक तथा व्यावहारिक महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। अहिंसा के साथ तत्सम्बन्धी सत्य, उपवास, ईश्वराराधन, दीनार्तिनाशन आदि सिद्धान्तो का भी स्पष्टीकरण करते हैं। अन्तिम अठारहवें अध्याय

में गान्धी जी अपने अहिंसात्मक नवीन समाज अथवा रामराज्य के स्वरूप का चित्र-चित्रण करते हैं।

इस पुस्तक का आरम्भ हिमालय (कोहमरी) की सुदूर एवं सुरम्य वनस्थलियों में हुआ—जो आज हमारे देश का खण्ड नहीं रहीं। १९४२ की क्रान्तिकारी घटनाओं ने, विशेषतया राष्ट्रनायक के अन्तिम देशव्यापी 'भारत छोड़ो' आन्दोलन ने लेखक के हृदय में विप्लव-सा उत्पन्न कर दिया और उसे, उस महती विभूति के प्रति, इस क्षुद्र रचना के रूप मे, अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि उपस्थित करने के लिए प्रेरित किया। प्रकृति की स्नेहमयी गोद में इस रचना का अङ्कुर उत्पन्न हुआ। अहर्निश, वस्तुतः अनवरत तल्लीनता के कुछ अविस्मरणीय मासों के बाद इस रचना की पूर्ति हुई।

पुस्तक का प्रथम प्रकाशन—अंग्रेजी अनुवाद-सहित अपने मित्र श्री धर्मदत्त जी सिन्धवानी की सहायता से लाहौर में हुआ। परन्तु प्रकाशन के बाद ही, देश के खण्डित होने पर, पुस्तक की अवशिष्ट लगभग ५०० प्रतियों का वहीं लोप होगया, जो कहां गईं, आजतक पता नहीं लग सका।

अब राजहंस प्रकाशन ने, दिल्ली से इसे पुनः प्रकाशित करने का जो आयोजन किया है, मैं उसके लिए व्यवस्थापकों का कृतज्ञ हूँ।

पुस्तक के संशोधन मे, श्री वागीश्वर जी संस्कृतोपाध्याय, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी तथा महामहोपाध्याय पण्डित चिन्नस्वामी शास्त्री, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से जो सहायता प्राप्त हुई है, उसके लिए मैं उनका अनुगृहीत हूँ। बहन कमलावती का हिन्दी रूपान्तर के लिए धन्यवाद है।

श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का विशेष धन्यवाद है, जिन्होंने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखकर मेरे साहित्यिक प्रयत्न को प्रोत्साहित किया है।

जनवरी, १९५०
नई दिल्ली।

इन्द्र

श्रीमन्मोहनगीता

विषयानुक्रमणिका

ओ३म्

श्रीमन्मोहन-गीता

प्रथम अध्याय

गुरुदेव उवाच

आर्यावर्ते पुण्यभूमौ, दौर्भाग्येणापदङ्कते।
दारिद्र्यदुःखिते देशे, व्याधिसन्तापपीडिते ॥१॥
अविद्यातिमिरे मग्ने, पराधीने पराश्रिते।
उद्बोधमधुना किञ्चित्, प्राप्ते मोहात् समुत्थिते ॥२॥
भारतीयाः समुद्युक्ताः, स्वातन्त्र्यसमराङ्गणे।
दीनबन्धो! महाभाग! प्रिया मे किमकुर्वत ॥३॥

पुण्यभूमि आर्यावर्त मे—जो दौर्भाग्य से आपत्तिग्रस्त है, दरिद्रता के दुःख से दु:खित है, व्याधियों के सन्ताप से पीड़ित है, अविद्यान्धकार में मग्न है, पराधीन एवं पराश्रित है, जो अब मोह से उठा है और कुछ उद्बोध को प्राप्त हुआ है—स्वाधीनता-युद्ध में लगे हुए मेरे प्यारे भारतवासियों ने, हे महाभाग दीनबन्धो! क्या किया? ॥१-३॥

दीनबन्धुरिन्द्रियेश उवाच

दृष्ट्वा दशां तु देशस्य, शोच्यामत्यन्तविक्लवाम्।
भूअवन् भारतीया वै, चिन्तासन्तप्तमानसाः ॥४॥

दीनबन्धु इन्द्रियेश ने कहा

देश की शोचनीय एवं अति विक्लव दशा को देख कर भारतवासी लोग चिन्ता से सन्तप्त मनवाले हुए ॥४॥

दासताश्रृङ्खलाश्छेत्तुं, निर्मातुं राष्ट्रमेव च।
स्वाधीनताधिगत्यर्थं, विदधुर्विधिपूर्वकम् ॥५॥

दासता की ज़ंजीरो को तोड़ने के लिए, राष्ट्र का निर्माण करने के लिए, स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए, उन्होंने विधिपूर्वक बनाया--॥५॥

एकं राष्ट्रमहासङ्घं, कांग्रेसाख्यं सुविश्रुतम्।
समरं च स्वराज्यस्य, तेनैव प्रारभन्त ते॥६॥

एक कांग्रेस नाम का सुप्रसिद्ध राष्ट्र महासङ्घ। और इसी के द्वारा उन्होने स्वराज्य का युद्ध आरम्भ किया ॥६॥

बहवो नायका वीराः, शक्ता देशानुरागिणः।
विद्वांसस्त्यागिनः स्वार्थ-शून्या लोकसमादृताः ॥७॥

बहुत से वीर नेता—शक्तिशाली, देशप्रेमी, विद्वान्, त्यागी, स्वार्थ-रहित एवं लोक-सम्मानित ॥७॥

मातृभूम्याः कृते प्रेम्णा, स्वप्राणानपि दित्सवः।
भक्त्या परमया युक्ताः, सर्वस्वाहुतिमाददुः ॥८॥

मातृभूमि के लिए, प्रेम द्वारा अपने प्राणों को भी देने के लिए उद्यत, परम भक्ति से युक्त, वे अपने सर्वस्व की आहुति देते थे ॥८॥

तत्राभवन्नरश्रेष्ठो, वयोवृद्धः पितामहः।
'दादाभाई'-सुविख्यातः, कीर्तिमान्नररञ्जनः ॥९॥

वहां नर-श्रेष्ठ, वयोवृद्ध, पितामह, दादाभाई नाम से विख्यात, कीर्तिमान् नौरोजी हुए ॥९॥

"स्वराज्यं सर्वदा श्रेयः, कामं दोषसमन्वितम् ।
स्वाधीनं ससुखं चैव, परराज्यात् सुशासितात्" ॥१॥

"स्वराज्य सदा अच्छा है, चाहे दोष युक्त भी क्यों न हो, सुशासन-युक्त विदेशी राज्य से----स्वाधीन एवं सुखपूर्ण होने के कारण" ॥१०॥

इत्यात्मशासनाधारं, सिद्धान्तं विश्वसम्मतम् ।
प्रख्याप्य भारतायापि, तदर्थं युद्धमाचरत् ॥११

इस तरह आत्म-निर्णय के विश्वसम्मत सिद्धान्त को भारतवर्ष के लिए भी ख्यापित करके, उन्होंने उसके लिए युद्ध करना आरम्भ किया ॥११॥

अन्येऽपि वहवः शूरास्तामेव सरणिं ययुः ।
फिरोजशाह आनन्द-चालूः श्रीशङ्करस्तथा ॥१२॥

और भी बहुत से शूरवीर उन्हीं के मार्ग पर अनुसरण करने लगे---फिरोज शाह, आनन्दचालु तथा श्री शङ्करन्---॥१२॥

रमेशचन्द्रदत्तो वै, बौनर्जीश्चन्द्रवर्करः ।
घोषो रासविहारीश्च, भूपेन्द्रवसुरेव च ॥१३॥

रमेशचन्द्र दत्त, बौनर्जी, चन्द्रवर्कर, रासविहारी घोष, और भूपेन्द्रवसु ॥१३॥

सिन्हा मजूमदारश्च, वासन्ती विदुषी तथा ।
हसनेमाम इत्याख्याः, सर्वेऽपि राष्ट्रनायकाः ॥१४॥

सिन्हा, मजूमदार, विदुषी बासन्ती, हसन इमाम---इत्यादि सब राष्ट्रपति हुए ॥१४॥

विशेषतो युवा वृद्धो, गोपालकृष्णगोखले: ।
निष्कामकर्मणा दिव्य—वाचा च देशगौरवम् ॥१५॥

विशेषतया युवा एवं वृद्ध गोपालकृष्ण गोखले निष्काम कर्म द्वारा तथा दिव्य वाणी द्वारा देश के गौरव को--॥१५॥

समुन्निनाय सोऽत्यर्थं,प्रथितश्चाभवद् भुवि ।
पुण्या कीर्तिस्तदीया हि, भारतेऽद्यापि वर्तते ॥१६॥

वह समुन्नत करता था और पृथ्वी पर सुविख्यात होता था । उसकी पुण्य कीर्ति भारतवर्ष में आज भी वर्तमान है ॥१६॥

सुरेन्द्रनाथबैनर्जी:, वाक्पटुर्वङ्गभूषणम् ।
पथा तेनैव देशस्य, भूमानं पर्यबृंहयत् ॥१७॥

सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी भी जो महान् वक्ता और बङ्गाल के भूषण थे, उसी मार्ग से देश की विभूति को बढ़ाते थे ॥१७॥

यूनस्तु वङ्गदेशीयान्, देशभक्त्या स दीपयन् ।
स्वदेशजपदार्थानां, प्रेमाणं तेषु सृष्टवान् ॥१८॥

वङ्गीय नवयुवको को देशानुराग से प्रज्वलित करते हुए,उन्होने स्वदेशी वस्तुओं के प्रेम को उन में उत्पन्न किया ॥१८॥

वन्दनीय: सुरेन्द्र: स:, जात्या हृदयमन्दिरे ।
प्रतिमा पूजनीयास्य, शाश्वतं राष्ट्रमन्दिरे ॥१९॥

वह सुरेन्द्रनाथ जाति द्वारा हृदयमन्दिर मे पूजने योग्य है। उनकी प्रतिमा राष्ट्र के मन्दिरो में वन्दना के योग्य है ॥१९॥

"स्वराज्यं जन्मसिद्धो मेऽधिकारोऽहं ग्रहीष्ये तत्"।
इत्युच्चै: सिंहनादेनाऽ घोषयन् स महारथ: ॥२॥

"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, उसे मैं लेकर रहूंगा"—इस तरह ऊँचे सिंहनाद से घोषणा करता हुआ वह महारथी—॥२०॥

महाराष्ट्रे महाज्योतिः, कश्चित् प्रादुर्बभूव ह ।
बालगङ्गाधरो लोक-मान्यो लोकशिरोमणिः ॥२१॥

महाराष्ट्र में, महाज्योति कोई प्रादुर्भूत हुई, लोकमान्य बालगङ्गाधर के नाम से—जो लोक शिरोमणि थे ॥२१॥

तिलकं जन्मभूम्याः सः, विश्वस्यापि च मण्डनम् ।
वेदविद्वान् महाविज्ञः, पुरातत्वविशारदः ॥२२॥

वह मातृभूमि के तिलक थे—विश्व के भूषण थे, वेदों के विद्वान्, महाविज्ञाता एवं पुरातत्वविद्या में अभिनिष्णात थे ॥२२॥

गीताशास्त्ररहस्यज्ञः, कर्मयोगी क्रियापरः ।
क्रान्तिमुत्पादयामास, स्वातन्त्र्यसमराङ्गणे ॥२३॥

गीताशास्त्र के रहस्य को जानने वाले, कर्मयोगी तथा कर्तव्यपरायण थे। उन्होंने स्वाधीनता के संग्राम में क्रान्ति को उत्पन्न कर दिया॥ २३ ॥

महासंघस्य सेनानीः, देशस्वातन्त्र्यवाहिनीम् ।
पथि श्रेयसि नीत्वा वै, वीरलोकमितो गतः ॥२४॥

महासङ्घ का सेनापति देश की स्वतन्त्रता-सेना को शुभ मार्ग पर लेजाकर वीर गति को प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥

देशबन्धुः पुनर्जातो, वङ्गस्य चित्तरञ्जनः ।
स्वराज्यस्य दलं सोऽपि, विनिर्माय निनाय तत् ॥२५॥

फिर देशबन्धु उत्पन्न हुए—वङ्गदेश के चित का रंजन करने वाले। उन्होंने भी स्वराज्य दल का निर्माण करके, उसका नेतृत्व किया॥२५॥

नेतृत्वे तस्य भूयांसो, भारतीयाः सभागताः ।
अकुर्वन् देशसङ्ग्रामं, लोकनिर्वाचिता भृशम् ॥२६॥

उनके नेतृत्व में बहुत से भारतवासी विधान-सभाओं में जाकर, लोगों से बार २ निर्वाचित होकर देश का संग्राम करते थे ॥ २६ ॥

मोतीलालः प्रयागस्थः, प्रयोगेणामुना पुनः ।
केन्द्रदुर्गं समाक्रम्य, देशमोक्षाय युद्धवान् ॥२७॥

प्रयाग में स्थित मोतीलाल जी ने भी इसी तरीके से केन्द्रीय विधानसभा पर आक्रमण करके देश की स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥ १७ ॥

पंजाब-केसरी लाज—पतरायो महायशाः ।
तथैव देशसङ्ग्रामं, विदधानोऽमरोऽभवत् ॥२८॥

यशस्वी पंजाबकेसरी लाजपतराय भी इसी तरह देश का संग्राम करते हुए अमर होगए ॥ २८ ॥

पण्डितो मालवीयोऽपि, श्रीमान्मदनमोहनः ।
मधुराकृतिगम्भीरो, राजनीतिविशारदः ॥२६॥

श्रीमान् पण्डित मदनमोहन मालवीय, मधुर आकृतिवाले, गम्भीर, राजनीति में चतुर--॥ २६ ॥

त्यागमूर्तिर्जगद्वन्द्यो, धर्मनिष्ठो महामनाः ।
द्रोणाचार्य इव ब्रह्म-तेजा लोकगुरुर्महान् ॥३०॥

त्याग की मूर्ति, जगद्वन्दनीय, धर्मपुत्र, महामना द्रोणाचार्य की तरह ब्रह्मतेजोयुक्त, महान् लोकगुरु—॥ ३० ॥

मातृभूम्या विमोक्षाय, गौरवायार्यसंस्कृतेः ।
यत्नशीलः सदा ह्येष, शान्तिमार्गाश्रयी भृशम् ॥३१॥

मातृभूमि के मोक्ष के लिए; आर्य संस्कृति के गौरव के लिए--यह सदा यत्न करते रहे--निरन्तर शान्ति-मार्ग का अवलम्बन करते हुए--॥३१॥

तेजस्वी तु पुनः ब्रह्म–वर्चस्वो राशिरोजसाम् ।
देशप्रेमाग्निना शश्वत्, प्रज्वलन्महसां चयः ॥३२॥

फिर एक तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी, ओज का पुञ्ज, देश प्रेम की अग्नि से निरन्तर जलता हुआ, महिमा का राशि—॥ ३२ ॥

शान्तिमार्गमहिंसायाः, जानन्नातिफलप्रदम् ।
हिन्द्स्वातन्त्र्यसेनायाः, निर्ममे तन्महाबलम् ॥३३॥

अहिंसा के शान्तिमार्ग को बहुत फलवान् न मानता हुआ, आज़ाद हिन्द फौज़ की महान् शक्ति का निर्माण करता था ॥ ३३ ॥

स सेनानीः सुभाषाख्यः, 'नेताजी' विरुदान्वितः ।
सुदूर-पूर्व-देशेषु, स्वातन्त्र्यार्थमयुध्यत ॥३४॥

वह सेनापति सुभाष,'नेताजी' पदवी से भूषित, सुदूर पूर्व देशों में, स्वतन्त्रता के लिए युद्ध करता था ॥ ३४ ॥

एवमेव महान् कश्चित्, दिव्याभो दिव्यशक्तिमान् ।
दैवीं विभूतिमादाया-वतीर्णो देवतोपमः ॥३५॥

इसी तरह महान् कोई दिव्य आभा वाला, दिव्यशक्ति-युक्त देवता-तुल्य दैवी विभूति को लेकर अवतीर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

जनतानयनानन्दश्चित्तचौरो विवेकवान् ।
देशदेशान्तरव्याप्त-ख्यातिः सर्वजनप्रियः ॥३६॥

जनता की आंखों को आनन्द देने वाला, चित्तों को चुराने वाला विवेकशील, देशदेशान्तर में ख्याति वाला, सर्व-जन-प्रिय--॥ ३६ ॥

तरुणभारतस्याथ, प्रगाढ़प्रेमभाजनम् ।
स्वदेशस्य कृते त्यक्त-सौख्यस्तपसि निष्ठितः ॥३७॥

भारत के नवयुवकों का विशेषरूप से प्रेमपात्र, स्वदेश के लिए सब सुखों को त्यागने वाला, तपोमय जीवन व्यतीत करने वाला—॥ ३७ ॥

स सम्राट् हृदयानां हि, नेहरुवंशभूषणम् ।
जवाहर इति ख्यातो, देशमुक्त्यै धृतव्रतः ॥३८॥

वह हृदय-सम्राट्, नेहरू वंश का भूषण, 'जवाहर' इस तरह विख्यात, देश की स्वतन्त्रता के लिए व्रत धारण किए हुए है--॥ ३८ ॥

एतान् सर्वानतिक्रम्य, भानुमानिव संस्थितः ।
स्वभासा भासयंल्लोकं, भारतं तु विशेषतः ॥३९॥

इन सब को अतिक्रमण करके, सूर्य की तरह विराजमान, अपनी ज्योति से समस्त संसार को प्रदीप्त करता हुआ, विशेषतया भारत को--॥ ३९ ॥

कैलाश इव शुभ्रश्रीरुत्तुङ्गो हिमश्रृङ्गवत् ।
उदन्वानिव गम्भीरः, शान्तः शान्तसमुद्रवत् ॥४०॥

कैलाश की तरह शुभ्र शोभावाला, हिमालय के शिखर की तरह ऊँचा, समुद्र की तरह गम्भीर, शान्त-सागर की तरह प्रशान्त—॥ ४० ॥

देशदारिद्रयसन्ताप—विदीर्णहृदयो यती ।
तपःकृशशरीरेण, देशदुःखं प्रकाशयन् ॥४१॥

देश की दरिद्रता के सन्ताप से विदीर्ण हृदय वाला, यती, तपःकृश शरीर से देश के दुःख को प्रकाशित करता हुआ—॥ ४१ ॥

विश्वकल्याणचिन्तायां, शाश्वतं मग्नमानसः ।
दूरदर्शी मुनिः कश्चित् त्रिदिवागतदेवता ॥४२

विश्वकल्याण की चिन्ता में निरन्तर मग्न मन वाला, दूरदर्शी, कोई देवता स्वर्ग से भटक कर आया हुआ--॥ ४२ ॥

महान् बुद्ध इवाबद्धो, बन्धुत्वे प्राणिभिः सह ।
भूतानां भूयसां भूयो-भूमानं भावयन् भृशम् ॥४३॥

महान् बुद्ध की तरह प्राणियों के साथ बन्धुत्व में बंधा हुआ--समस्त जीवों के भूरि-कल्याण का निरन्तर चिन्तन करता हुआ--॥ ४३ ॥

सेवाधर्ममनासक्ति--योगं कर्मार्चनाविधिम् ।
दीनार्तिनाशनं मोक्ष-साधनं बोधयन्नथ ॥४४॥

सेवा-धर्म, अनासक्ति योग, कर्म-मार्ग द्वारा पूजा के मार्ग को, दीनों के दुःख निवारण को, मोक्ष का साधन बतलाता हुआ--॥ ४४ ॥

भगवान् वासुदेवोऽन्योऽवतीर्ण इव भारते ।
महात्मा मोहनो गान्धी-नामा विश्वविमोहनः ॥४५॥

दूसरा भगवान् कृष्ण भरतवर्ष मे अवतार ग्रहण किए हुए--महात्मा मोहन (दास) गांधी नाम वाला, विश्व को मोहने वाला-- ॥ ४५ ॥

समुद्धाराय दीनानां, स्वातन्त्र्यस्थापनाय च ।
विश्वप्रेमप्रसाराय, सम्भूतः सोऽधुना युगे ॥४६॥

दीनों के उद्धार के लिए, स्वतन्त्रता की स्थापना के लिए, विश्वप्रेम का प्रसार करने के लिए, वह अब इस युग में उत्पन्न हुआ ॥ ४६ ॥

गुरुदेव उवाच

अधिकं श्रोतुमिच्छामि--श्लोकमस्य महात्मनः ।
कथं वा कीदृशं तेन, देशोत्थानं व्यधायि तत् ॥४७॥

गुरु देव ने कहा

मैं इस महात्मा के यश को अधिक सुनना चाहता हूं । कैसे किस

प्रकार का देशोत्थान उसने किया ? ॥ ४७ ॥

स्वाधीनताहवे हिंसा—मनादृत्यापि सर्वथा ।
विजयाय कथं के वा, वीरा वीरत्वमापिताः ॥४८॥

स्वाधीनता के युद्ध में हिंसा का सर्वथा तिरस्कार करके, कैसे उसने वीरो को वीरता एवं विजय के मार्ग पर आरूढ़ किया ? ॥ ४८ ॥

दीनबन्धुरुवाच

गुरुदेव ! ब्रवीमि ते, मोहनस्य महात्मनः ।
चमत्कारमयं कार्यं, क्रान्तिकारकमेव यत् ॥४९॥

दीनबन्धु ने कहा

हे गुरुदेव ! मैं आपको महात्मा मोहन के चमत्कार पूर्ण एवं क्रान्तिकारी कार्य का वर्णन करता हूं ॥ ४९ ॥

भारते नैव संसारे, सकलेऽप्रतिमं हि तत् ।
श्रीमन्मोहनगीताञ्च, विद्धि गीतामिमां पुनः ॥५०॥

भारत में ही नहीं, समस्त ससार मे वह अनुपम है । इस गीता को आप 'श्रीमन्मोहन-गीता' समझें ॥ ५० ॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां मोहनप्रादुर्भावो नाम प्रथमोऽध्यायः

श्रीमन्मोहन-गीता अथवा अहिंसायोग में
मोहन-प्रादुर्भाव नाम प्रथम अध्याय
समाप्त

द्वितीय अध्याय

दीनबन्धुरुवाच

एवं प्रवर्तमाने तु, महाभारतसङ्गरे ।
मोहनं नायकं कृत्वा, भारतीयाः प्रयेतिरे ॥१॥

दीनबन्धु ने कहा

इस तरह भारत के महान् युद्ध के चलते हुए, भारतवासियों ने मोहन को सेनापति बना कर युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥ १ ॥

श्रद्धधानाः समाश्वस्ताः, सर्वे तस्यानुगामिनः ।
मार्गं च मार्गितं तेन, प्रययुर्विजिगीषवः ॥२॥

उसके श्रद्धावान् विश्वस्त सब अनुयायियों ने उसके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर विजय की इच्छा से, चलना शुरू किया ॥ २ ॥

राजर्षी राजगोपालो, दक्षिणस्थो विवेकवान् ।
राजेन्द्रश्च विहारस्थः, स्थितधीः स्थिरमानसः ॥३॥

दक्षिण देश के विवेकशील राजर्षि राजगोपालाचार्य तथा बिहार में स्थित, स्थितप्रज्ञ स्थिरचित राजेन्द्रप्रसाद --॥ ३ ॥

सौराष्ट्रवल्लभो वीरः, पटेलो विठ्ठलानुजः ।
महिलाजननेत्री च, कवयित्री सरोजिनी ॥४॥

गुजरात के प्यारे, विठ्ठल के अनुज, वीर पटेल तथा स्त्रीसमाज की

नेत्री कवयित्री सरोजिनी देवी-॥ ४ ॥

स च सीमाप्रदेशस्थः, पठानजातिगौरवम् ।
खानाब्दुलगफारश्च, परमेश्वरसेवकः ॥५॥

वह सीमाप्रान्त का नेता, पठानजाति का गौरव, खुदाई खिदमतगार खान अब्दुलगफ्फार खान-॥ ५ ॥

अन्येऽन्यप्रान्तवास्तव्याः, नेतारो लोकवन्दिताः ।
पन्तः शुक्लस्तथा सिंहः, खेरश्च खानसाहिबः ॥६॥

और भी दूसरे प्रान्तों मे रहने वाले लोकवन्दित नेता लोग--पन्त शुक्ल, सिंह, खेर, एवं खानसाहिब ॥ ६ ॥

आज़ादजमनालाल—देसाईसत्यमूर्तयः ।
मुन्शीः विजयलक्ष्मीश्च, सर्वे मोहनमोहिताः ॥७॥

आजाद, जमनालाल, देसाई, सत्यमूर्ति, मुन्शी, विजयलक्ष्मी--सब मोहन से मोहित हुए २ ॥ ७ ॥

तस्याज्ञां तु शिरोधार्यां, कृत्वा धर्मपरायणाः ।
अहिंसाविधिना युद्ध—माचरन् युद्धकोविदाः ॥८॥

उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करके, कर्तव्य में तत्पर हुए २, युद्ध-कला में निपुण, अहिंसाविधि द्वारा युद्ध करते थे ॥ ८ ॥

एकदा हि विहारान्तश्चम्पारणभुवि स्थितम् ।
मोहनं तु समागत्य, महासेनापतिं पतिम् ॥९॥
श्रद्धया परयोपेतो, विनीतात्माऽधिनायकः ।
राजेन्द्रो व्याजहारेमां, सादरं मधुरां गिरम् ॥१०॥

एक दिन विहारान्तर्गत चम्पारण के मैदान मे खड़े हुए, अपने

स्वामी महासेनापति मोहन के पास जाकर—परम श्रद्धा से युक्त होकर, विनीतात्मा, नायक राजेन्द्रने आदर-सहित इस मधुर वाणी को कहा ॥१०॥

राजेन्द्र उवाच

किमित्यार्य विधायैतदुग्रसङ्ग्रामताण्डवम् ।
दिधक्षसि मुधा सर्वं, भारतं शान्तिसंयुतम् ॥११॥

राजेन्द्र ने कहा

हे आर्य! इस उग्र संग्राम के नृत्य को करके, क्यों व्यर्थ शान्तिपूर्ण समस्त भारत में आप आग लगाना चाहते हैं? ॥ ११ ॥

क्षिपन् कारागृहेष्वेवं, वीरान् सहस्रशो वृथा ।
किमेवं देशकल्याणं, विनाशं वा चिकीर्षसि ॥१२॥

जेलखानों में इसतरह सहस्रों वीरों को वृथा फैंक कर, आप कौनसा देश का कल्याण अथवा विनाश करना चाहते हैं? ॥ १२ ॥

दीनान् दरिद्रयन् भूयो, दुःखितान् दुःखयन् पुनः ।
सन्तप्तांस्तापयंश्चैव, किं श्रेयः पश्यसि प्रियम् ॥१३॥

दरिद्रों को अधिक दरिद्र बनाकर, दुःखियों को अधिक दुःखी करके और सन्तप्तों को अधिक तपा कर, आप कौनसी प्रिय भलाई देखते हैं? ॥ १३ ॥

वियुक्ताः पितृभिः पुत्राः, भर्तृभिश्च पतिव्रताः ।
स्वसारो भ्रातृभिश्चैव, किन्निमित्तं कृताः पृथक् ॥१४॥

पुत्र अपने पिताओं से वियुक्त हो गए। पत्नियां अपने पतियों और बहिनें अपने भाइयों से किस लिए पृथक् कर दी गईं? ॥ १४ ॥

देशोऽयं दीर्घनिद्रायां, प्रसुप्तोऽसंशयं चिरात् ।
मन्ये दीनदरिद्रोऽयं दासताशृंखलाकुलः ॥१५॥

यह देश निस्सन्देह बहुत देर से दीर्घनिद्रा में सोया हुआ है । मैं जानता हूं कि यह दीन और दरिद्र है, दासता की ज़ंजीरों में बन्धा हुआ है ॥ १५ ॥

परं द्विशतवर्षेषु, परां शान्तिस्थितिं गतः ।

सुशासनव्यवस्थायामास्थितः सुखितस्तथा ॥१६॥

परन्तु दो सौ वर्षों से परम शान्ति की स्थिति मे विराजमान है, सुशासन की व्यवस्था में स्थित है तथा सुखी है ॥ १६ ॥

व्यापारो व्यवसायोऽत्र, समृद्धनगराणि च ।

ग्रामाश्च सस्यसम्पन्नाः, देशशान्तिप्रकाशकाः ॥१७॥

यहां व्यापार और व्यवसाय हैं, समृद्ध नगर हैं, हरे भरे खेतों वाले ग्राम हैं, जो देश की शान्ति को प्रकाशित करते हैं ॥ १७ ॥

किमर्थं शान्तिमेतान्तु, देशसन्तोषदायिनीम् ।

विद्रोहाग्निप्रसारेण, विनाशयितुमिच्छसि ॥१८॥

देश को सन्तुष्ट रखने वाली इस शान्ति को, विद्रोहाग्नि फैलाकर नष्ट करने में, आपका क्या प्रयोजन है ? ॥ १८ ॥

अज्ञोऽस्म्यहं मोहविमूढचेताः

सन्देहसन्दोहहतान्तरात्मा ।

जाने न कल्याणगतिं स्वकीयां

ज्ञानाय तेऽहं शरणागतोऽस्मि ॥१९॥

मैं अज्ञ हूँ, मोह से मेरा चित मूढ़ हो रहा है, मेरी अन्तरात्मा सन्देह-समूह से विक्षुब्ध है । मैं अपने कल्याण-मार्ग को नहीं समझ रहा । ज्ञान का प्रकाश ग्रहण करने के लिये, मैं तेरी शरण आया हूं ॥ १९ ॥

कर्तव्यकर्म प्रति बोधशून्यो
न युध्यमानः किल कातरोऽहम् ।
पृच्छामि यन्मे परमं हितं स्या-
च्छिष्योऽस्मि ते मोहन ! शाधि मां त्वम् ॥२॥

अपने कर्तव्य-कर्म को न जानता हुआ, युद्ध न करता हुआ, मैं कायर हो रहा हूं । आपसे मैं पूछता हूं,जो मेरे लिये हितकर हो । हे मोहन ! मैं आप का शिष्य हूं,आप मुझे शिक्षा दें ॥ २० ॥

श्री मोहन उवाच

लोकेऽस्मिन् द्विविधा शान्तिः, प्रोक्ता शान्तिप्रिय ! प्रिय !
श्मशानशान्तिरुद्यान—शान्तिश्चैव सुलक्षणा ॥२१॥

श्री मोहन ने कहा

हे प्रिय, शान्ति-प्रिय राजेन्द्र ! संसार मे दो प्रकार की शान्ति कही जाती है--श्मशान शान्ति तथा शुभलक्षण वाली उपवन-शान्ति ॥ २१ ॥

उद्याने सरितोऽरिक्ताः, वहन्ति वान्ति वायवः ।
मधुरं विहगा मुग्धाः गायन्ति प्रातरुत्थिताः ॥२२॥

उपवन मे भरी हुई नदिया बहती हैं, वायुएं चलती हैं । प्रातःकाल जागे हुए मुग्ध पक्षी मधुर गान करते हैं ॥ २२ ॥

नृत्यन्ति केकिनो मत्ताः, कुरङ्गा विहरन्ति च ।
स्वनन्ति तरवश्चापि, समीरमर्मरायिताः ॥२३॥

मोर मस्त होकर नाचते हैं, हरिण विहार करते हैं, हवा से मर्मर शब्द करने वाले वृक्ष शब्दायित होते हैं ॥ २३ ॥

विकिरन्ति च सोल्लासं, पुष्पाणि वनदेवताः ।
वितरन्त्यः ससङ्गीतं, सुरेभ्यः कुसुमस्रजः ॥२४॥

वन की देवताएं गाती हुई देवो के लिये वनंमालाएं देती हैं और उल्लास के साथ फूलो को बखेरती हैं ॥ २४ ॥

तथापि प्रकृतिः शान्ता, गम्भीराकृतिसुन्दरी ।
शान्तिं तनोति सर्वत्र, शुभ्रां परमशोभनाम् ॥२५॥

तो भी प्रकृति शान्त हुई २, गम्भीर आकृति से सुन्दर बनी हुई, सब जगह परम शोभन एवं शुभ्र शान्ति का विस्तार करती है ॥ २५ ॥

श्मशानेऽपि तथा शेते, शान्तिरेकान्तनीरवा ।
यत्र च घोरनिद्रायां, शेरते हि शरीरिणः ॥२६॥

श्मशान में भी एकान्त निःशब्द शान्ति विराजमान होती है, जहां प्राणी घोर निद्रा में सो रहे होते हैं ॥२६ ॥

एको महाशनस्तत्र, श्वसिति केवलं बलात् ।
आकर्षन् विष्टपं कृत्स्नं, कालः कवलयन्निव ॥२७॥

एक महाभक्षक काल ही केवल वहा श्वास लेता है, जो बलपूर्वक समस्त विश्व को, अपनी तरफ खेचता हुआ, अपना ग्रास बनाना चाहता है ॥ २७ ॥

वायुर्न वेपते तत्र, धुन्वन्ति तरवो न च ।
खेलन्ति न खगाश्चापि, तस्मिन्नन्तकसद्मनि ॥२७॥

वायु वहां कम्पन नहीं करती, वृक्ष वहां नहीं हिलते । पक्षी भी उस यमराज के घर में नहीं चहचहाते ॥ २८ ॥

नाहं तु तादृशीं शान्तिं, शरीरात्मविनाशिनीम् ।
स्वदेशायाभिनन्दामि, मनोबुद्धिविघातिनीम् ॥२६॥

ऐसी शान्ति को, जो शरीर और आत्मा का विनाश करने वाली है, मन और बुद्धि का विघात करती है, मैं अपने देश के लिए पसन्द

नहीं करता ॥ २६ ॥

हा ! कष्टं मे मृतप्रायाः, निर्वीया देशबन्धवः ।
दास्यदोषान्न जानन्ति, मृषाशान्तिविमोहिताः ॥३०॥

हाय ! मेरे मृतप्राय, वीर्यहीन देशवासी, झूठी शान्ति से मोहित हुए २ दासता के दोषों को नहीं समझते ॥ ३० ॥

तानिमान् भारतीयान् स्वानुद्धृत्य मृत्युशान्तितः ।
शान्तिं प्रति निनीषामि, श्रेयसीं जीवनप्रदाम् ॥३१॥

मैं इन अपने भारतवासियों को मृत्यु की शान्ति से बाहर निकाल कर जीवन-दायिनी कल्याणकारिणी शान्ति की तरफ लेजाना चाहता हूं ॥३१॥

सेयं शान्तिः सुवीराणां, निर्बलानां न सर्वथा ।
निर्भयानां स्वतन्त्राणामात्मसम्मानशालिनाम् ॥३२॥

यह शान्ति वीर पुरुषों की है । निर्बलों की सर्वथा नहीं । यह निर्भय, स्वतन्त्र, आत्मसम्मान-शाली व्यक्तियों की है ॥ ३२ ॥

तामेव शान्तिमिच्छामि, द्रष्टुं लोके प्रतिष्ठिताम् ।
विश्वस्मिन्नपि विश्वेऽस्मिन्, भारते तु विशेषतः ॥३३॥

उसी शान्ति को संसार मे, इस समस्त विश्व में, विशेषतया भारत-वर्ष में स्थापित हुआ मैं देखना चाहता हूं ॥ ३३ ॥

राजेन्द्र उवाच

संसारेऽस्मिन् महायुद्ध—कोलाहलसमाकुले ।
विश्वशान्तिदिवास्वप्नं, कथं देव ! दिदृक्षसे ॥३४॥

राजेन्द्र ने कहा

महान युद्धों के कोलाहल से परिपूर्ण इस संसार में, हे देव ! आप

किस तरह विश्व-शान्ति के दिवास्वप्न को देखना चाहते हैं ? ॥ ३४॥

जातयो जनताः पूगाः, गणाः श्रेण्यः समाजकाः ।
समुदायास्तथा सर्वे, विद्वेषवह्नितापिताः ॥३५॥

जातियां, जनता, युग, गण, श्रेणिया, समाज एवं समुदाय सब विद्वेष की आग से तपाए जारहे हैं ॥ ३५ ॥

कलहः परिवारेषु, सुतेषु जनकेषु च ।
प्रत्यहं पतिपत्नीषु, प्रतिग्रामं गृहे गृहे ॥३६॥

गांव २ में, घर २ मे, प्रतिदिन , परिवारो मे, पुत्रो में, पिताओं में, पति पत्नियो में कलह हो रहे हैं ? ॥ ३६ ॥

कथमार्य ! जगत्यस्मिन्नशान्ते विप्लवाकुले ।
शान्तिमसम्भवप्रायां, त्वं स्थापयितुमिच्छसि ॥३७॥

हे आर्य ! इस अशान्त विप्लवमय जगत् मे आप कैसे असम्भव-प्राय शान्ति को स्थापित करना चाहते है ॥ ३७ ॥

श्री मोहन उवाच

न मन्येऽसम्भवं किञ्चिजा त्वहं जगतीगतम् ।
मनुष्यप्रकृतिं दैवीं जाने च प्रयते तथा ॥३८॥

श्री मोहन ने कहा

मैं जगत् में किसी वस्तु को कदापि असम्भव नहीं समझता। मैं मनुष्य की प्रकृति को दैवी जानता हूँ और उसके अनुसार प्रयत्न करता हूँ ॥ ३८ ॥

सर्वेषां हृदयान्तेषु, चेतःप्रान्तान्तरस्थितौ ।
सुरासुरौ विराजेते, कार्याकार्यनियामकौ ॥३९॥

सब के हृदयान्तस्तल में, चित्त-प्रान्त में व्यवस्थित, कार्य और अकार्य का निदर्शन कराने वाले सुर और असुर विराजमान हैं ॥ ३९ ॥

आसुरीं विकृतिं प्राप्तः, पुरुषश्चेष्टते पृथक् ।
सुरत्वप्रकृतिं यातः, नरस्तु चेष्टते पृथक् ॥४०॥

आसुरी वा राक्षसी विकृति को प्राप्त हुआ पुरुष पृथक् चेष्टा करता है और दैवी स्वभाव को प्राप्त करके मनुष्य पृथक् रूप मे चेष्टा करता है ॥ ४० ॥

असुरः संस्तमोमूढः, क्रुध्यन् द्रुह्यन् द्विषन् शसन् ।
निर्दयं युध्यमानः सः, रक्तलोलुपमानसः ॥४१॥

राक्षस बन कर वह तमोमूढ़ हुआ २ क्रोध, द्रोह, द्वेष एवं हिंसा मे लिप्त होकर, निर्दयतापूर्वक युद्ध करता हुआ, दूसरो के खून का प्यासा हो जाता है ॥ ४१ ॥

सङ्गरं वीरताक्षेत्रं, रुधिरप्लावनं नयम् ।
परपीडां परग्लानिं, देशभक्तिं स बुध्यते ॥४२॥

वह रणक्षेत्र को वीरता का क्षेत्र, रुधिर बहाने को नीति, दूसरों की हिंसा तथा पीड़ा को देशभक्ति समझता है ॥ ४२ ॥

सुरश्च सन् पुनः सत्व-प्रधानो मुदितायुतः ।
मैत्रीपवित्रितां वृत्तिं वितन्वन् स समन्ततः ॥४३॥

देवता बन कर वह सत्व-प्रधान हुआ २ हर्ष से युक्त होकर, मित्रता से पवित्र वृत्ति का चारो तरफ विस्तार करता हुआ—॥ ४३ ॥

न केवलं स्वजातीयान्, जगतः प्राणिनोऽखिलान् ।
स्नेहसान्द्रदृशा पश्यंश्चिन्तयन् विश्वमङ्गलम् ॥४४॥

न केवल अपने समजातीय लोगों को, अपितु संसार के सब प्राणियों को स्नेहसनी दृष्टि से देखता हुआ और विश्वमंगल का चिन्तन करता हुआ ॥ ४४ ॥

अहिंसामात्मनः प्राणान्, सत्यं श्वासांश्च जीवनम्।
दीनार्तिनाशनं मोक्षं, देवपूजां च बुध्यते ॥४५॥

अहिंसा को अपना प्राण, सत्य को श्वास एवं जीवन तथा दीनदुःख-निवारण को मोक्ष और ईश्वरपूजा समझता है ॥ ४५ ॥

राजेन्द्र उवाच

अहिंसा नाम सिद्धान्तः, प्रेयांस्ते विश्वविश्रुतः।
परं नास्यावगच्छामि, तत्वतः शुद्धकल्पनाम् ॥४६॥

राजेन्द्र ने कहा

अहिंसा नाम का सिद्धान्त तेरा प्रिय है और जगद्-विख्यात है। परन्तु मैं उसके तत्व को और शुद्ध कल्पना को नहीं समझता ॥ ४६ ॥

अहिंसाव्रतिनो भाषा, काऽहिंसास्थस्य मोहन।
अहिंसकः किमासीत, किं कुर्वीत ब्रुवीत किम् ॥४७॥

हे मोहन! अहिंसा में स्थित अहिंसाव्रती की क्या परिभाषा है? अहिंसक कैसे रहे, क्या करे और क्या बोले? ॥ ४७ ॥

श्री मोहन उवाच

मनसा कर्मणा वाचा, कस्यापि तु कदाचन।
चेष्टतेऽमङ्गलं यो नाऽहिंसाव्रती स उच्यते ॥४८॥

श्री मोहन ने कहा

मन, वचन, कर्म से जो कभी किसी के अमंगल की चेष्टा नहीं करता; वह अहिंसाव्रती कहा जाता है ॥ ४८ ॥

स्वयं दुःखानि भूयांसि सोढ्वापि कृच्छ्रवेदनाः ।
परेषां मङ्गलाकाङ्क्षी, सोऽहिंसास्थो मुनिर्मतः ॥४६॥

स्वय वहुत दुःख एवं समस्त वेदनाएँ सहन करके भी जो दूसरों के मंगल की आकाक्षा करता है, वह अहिंसा में स्थित मुनि माना जाता है ॥ ४६ ॥

यो भूतेषु हि सर्वेषु, कृमिपक्षिमृगादिषु ।
निर्विशेषं कृपादृष्टि-स्तस्याहिंसा प्रतिष्ठिता ॥५०॥

जो सब प्राणियो मे, कृमि, पक्षि, मृग आदियो मे भी समान रूप से दयादृष्टि रखता है, उसकी अहिंसा प्रतिष्ठित है ॥ ५० ॥

यश्चात्मसममन्यांस्तु, संसारप्राणिनोऽखिलान् ।
दयते सेवते चैव, तस्याहिंसा प्रतिष्ठिता ॥५१॥

जो अपने समान अन्य सब संसार के प्राणियो पर दया करता है और उनकी सेवा करता है, उसकी अहिसा प्रतिष्ठित है ॥ ५१ ॥

द्वेषो वैरमकारुण्यं, परार्थध्वंसनं तथा ।
स्वार्थाभिनन्दनं चैव, हिंसास्रोतांसि पञ्च वै ॥५२॥

द्वेष, वैर, निर्दयता, परार्थनाशन तथा स्वार्थसेवन, पांच हिंसा के स्रोत हैं ॥ ५२ ॥

तानीमानि नियम्यैव, सर्वतो विद्रुतानि हि ।
अहिंसायोगमाप्नोति, प्रयतात्मा विशुद्धधीः ॥५३॥

सब तरफ बहने वाले ,इन स्रोतों को नियन्त्रण में रखकर पवित्रात्मा विशुद्धबुद्धि व्यक्ति अहिसायोग को प्राप्त करता है ॥ ५३ ॥

अहिंसा नाम धर्मोऽयं, तपोमूलस्तपःश्रितः ।
तपसैव हि संसिद्धिमहिंसाव्रतिनो गताः ॥५४॥

अहिंसा नाम का यह धर्म तप पर आश्रित है । अहिंसाव्रती लोग तप द्वारा ही सिद्धि को प्राप्त हुए ।। ५४ ।।

नैष धर्मो नृशंसस्य, निस्त्रिंशाग्रे शिरोनतिः ।
परन्तु विजयस्तस्य, प्रयोगेणात्मतेजसः ।।५५।।

यह (अहिंसा) अत्याचारी की तलवार के सम्मुख सिर झुकाने का नाम नहीं, परन्तु आत्मिक बल के प्रयोग से उस पर विजय पाने का नाम है ।। ५५ ।।

विजयो यस्त्वहिंसायाः द्रढ़ीयान् स हि मे मतः ।
रुधिरप्लावनैर्लब्धो, जयः स्थेयान्न कुत्रचित् ।।५६।।

जो अहिंसा द्वारा प्राप्त विजय है, वह मेरी सम्मति में दृढ़ विजय है । रुधिर के बहाने से प्राप्त विजय कहीं स्थिर नहीं हो सकता ।। ५६ ।।

कर्कशोऽपि द्रवत्यश्मा, सद्यः स्नेहहुताशने ।
निर्दयं म्रदयत्येव, प्रेमाग्निः परिपन्थिनम् ।५७।।

कठोर भी पत्थर शीघ्र प्रेम की आग मे पिघल जाता है । प्रेम की आग निर्दय शत्रु को भी कोमल बना देती है ।। ५७ ।।

द्रवति स्नेहतापेन, हृदयं निर्दयं न चेत् ।
दोषस्तन्मन्दतायाः सः, प्रेमाग्नेर्न कदाचन ।।५८।।

यदि निर्दय हृदय स्नेह की अग्नि से द्रवित नहीं होता, तो वह स्नेह की मन्दता का दोष है, प्रेमाग्नि का कदापि नहीं ।। ५८ ।।

किन्तु शौर्यं शतघ्नीतो, गुप्त्वा परकदर्थनम् ।
नृशंसनाशनञ्चैव, निरीहशिशुयोषिताम् ।।५९।।

इसमें क्या शूरता है–जो छिप कर तोप से शत्रु को मारना है अथवा निरपराध बालक तथा स्त्रियों की निर्दयतापूर्वक हत्या करना है ?॥ ५९ ॥

किं वा शौर्यं समागत्य, शतघ्नीमुखमुत्थितम् ।
ससाहसं सहास्यं च, मरणं स्वेच्छया सुखम् ॥६०॥

क्या इसमें अधिक शूरता नहीं कि तोप के उठते हुए मुख के सम्मुख जाकर साहसपूर्वक, हँसते हुए, सुख के साथ स्वेच्छापूर्वक मृत्यु को स्वीकार कर लिया जाय ॥ ६० ॥

निर्वीर्यः पौरुषापेतः, पुरुषो न कदाचन ।
साहसं तादृशं कर्तुं, क्षमो मन्ये मनागपि ॥६१॥

वीरता से रहित, पुरुषार्थहीन पुरुष कभी वैसा साहस, थोड़ा भी, करने के लिए समर्थ नहीं होता—ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ६१ ॥

केवलं बलवानेव, त्वहिंसाशस्त्रशासनम् ।
बोधति निर्बलो नैव, हिंसाकलुषितो हि सः ॥६२॥

केवल बलवान् ही अहिंसा शस्त्र को चलाना जानता है, निर्बल नहीं, क्योंकि वह हिंसा से कलुषित होता है ॥ ६२ ॥

अहिंसां ज्यायसीं जाने, हिंसातो बलवत्तराम् ।
क्षमां जाने तथा दण्डा-दधिकां पौरुषान्विताम् ॥६३॥

मैं अहिंसा को हिंसा से अधिक उत्तम एवं बलवान् मानता हूँ । इसी तरह क्षमा को मैं दण्ड से अधिक पुरुषार्थयुक्त जानता हूँ ॥६३॥

अलङ्कारः क्षमा वीर-योद्धॄणां परमोत्तमः ।
मण्डनं शूरतायाः नोऽधिकञ्जाने किमप्यहम् ॥६४॥

क्षमा वीर योद्धाओं का परम उत्तम भूषण है । शूरता का इससे बढ़ कर मैं कोई अलङ्कार नहीं जानता ॥ ६४ ॥

परं क्षमा क्षमा तावद्-यावच्छक्तिस्तु दण्डने ।
क्षमां निरर्थिकां मन्ये, याऽसहायजनोत्थिता ॥६५॥

परन्तु क्षमा भी तब तक क्षमा है, जब तक दण्ड देने की शक्ति है। उस क्षमा को मैं निरर्थक समझता हूँ, जो मनुष्य से असहाय अवस्था मे उत्पन्न होती है ॥ ६५ ॥

देशस्य चापि कल्याणं, स्वराज्यप्राप्तिमेव च ।
अहिंसाविधिनैवाहं, संपश्याम्युत्तमं हितम् ॥६६॥

देश का कल्याण तथा स्वराज्य-प्राप्ति भी, मैं अहिंसा के मार्ग से ही सम्भव समझता हूँ। इसी मे मै देश का उत्तम हित देखता हूं ॥ ६६ ॥

न शस्त्रसज्जिता सेना जनताविप्लवो न वा ।
कर्तुं शक्नोति तत्कार्यं, यच्छक्यं स्यादहिंसया ॥६७॥

शस्त्र से सज्जित सेना अथवा जनता का विद्रोह वह कार्य नहीं कर सकता जो अहिंसा द्वारा हो सकता है ॥ ६७ ॥

जनताविप्लवो रोग—चिकित्सा न कथञ्चन ।
प्रतिशोधाधृतिं-क्रोध-मयी हिंसा न सौख्यकृत् ॥६८॥

जनता का विद्रोह रोग की कोई चिकित्सा नहीं है। प्रतिहिंसा अधैर्य, एवं क्रोध से युक्त हिंसा कभी सुख उत्पन्न करने वाली नहीं हो सकती ॥ ६८ ॥

नातो विश्वसिमि श्रेयः, किञ्चित् स्याद्देशवासिनाम् ।
आतङ्कवादहिंसाद्र्—गुप्तमार्गाश्रयेण हि ॥६९॥

इसलिए, मैं नहीं समझता कि आतङ्क अथवा अन्य गुप्त हिंसा-मार्ग का आश्रय करने से देशवासियो का कल्याण हो सकता है ॥ ६९ ॥

सीसकैर्हन्यमानोऽपि, शान्तोऽहिंसाव्रती सदा ।
ध्यायत्यक्रोधनो भद्रं घातकस्यापि दुर्मतेः ॥७०॥

शान्त अहिंसाव्रती तो सीसों से मारा जाता हुआ भी क्रोधरहित होकर दुर्बुद्धि घातक की भलाई का ही चिन्तन करता है ॥ ७० ॥

नायं धर्मो मुनीनां वा तापसानाञ्च केवलम् ।
विश्वेऽस्मिन् सर्वभूतानामहिंसां धर्ममाददे ॥७१॥

यह धर्म केवल मुनियों अथवा तपस्वियों का ही नहीं । इस विश्व में सब प्राणियों के लिए अहिंसा को मैं धर्म स्वीकार करता हूँ ॥ ७१ ॥

नाहमादर्शवाद्येव, स्वप्नदर्शो न निष्क्रियः ।
अहिंसां साधनं मन्येऽन्तर्जातीयव्यवस्थितेः ॥७२॥

मैं आदर्शवादी नहीं, स्वप्न देखने वाला अकर्मण्य व्यक्ति नहीं हूँ । मैं अहिंसा को अन्तर्जातीय व्यवस्था का साधन मानता हूँ ॥ ७२ ॥

अहिंसा जननी प्रेम्णोऽहिंसा शान्तिप्रदायिनी ।
अहिंसा विष्टपस्यास्य, स्थेयःकल्याणकारिणी ॥७३॥

अहिंसा प्रेम की जननी है । अहिंसा शान्ति को देने वाली है । अहिंसा इस जगत् के स्थिर कल्याण को करने वाली है ॥ ७३ ॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायामहिंसामीमांसा नाम द्वितीयोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में
अहिंसामीमांसा नाम द्वितीय अध्याय
समाप्त

तृतीय अध्याय

राजेन्द्र उवाच

अहिंसां देश कल्याण—कर्त्रीं जानामि मोहन !
वैयर्थ्यञ्चावगच्छामि, राष्ट्रविप्लवकर्मणाम् ॥१॥

राजेन्द्र ने कहा

हे मोहन ! मै अहिसा को देश का कल्याण करने वाली मानता हूँ । मै राष्ट्र में विप्लव उत्पन्न करने वाले कर्मों की व्यर्थता को भी समझता हूँ ॥ १ ॥

संसिद्धिर्हिसया नैव, ज्यायसो जातु हिंसकात् ।
अहिंसा भारतायाद्य, मन्ये नीतिर्महाफला ॥२॥

बलवान् हिसक के सम्मुख हिंसा द्वारा कभी सिद्धि वा सफलता नहीं हो सकती । आज भारत के लिए अहिंसा ही, मै मानता हूँ, अति फलवती नीति हैं ॥ २ ॥

परं तां नावगच्छामि, विश्वकल्याणसाधनम् ।
अहिंसया कथं शान्तिः, संसारे सम्भवा भवेत् ॥३॥

परन्तु उसे (अहिसा को) मैं विश्वकल्याण का साधन नहीं समझता । अहिसा से संसार मे शान्ति किस तरह सम्भव हो सकती है ? ॥ ३ ॥

सहस्रशः समा याताः, मनुष्यसृष्टिसंसृतौ ।
परं नेदीयसीं शान्तिं, वीक्षे नाद्यापि कुत्रचित् ॥४॥

इस मनुष्य सृष्टि के प्रवाह में हजारों वर्ष व्यतीत हो गए। परन्तु मैं शान्ति को आज भी कहीं समीप आता हुआ नहीं देखता ॥ ४ ॥

मानवप्रकृतिं वीक्ष्य, निष्ठुरां कुटिलामथ ।
कथमहिंसया विश्व-कलहान् शमयिष्यसि ॥५॥

मनुष्य की प्रकृति को निष्ठुर एवं कुटिल देख करके, आप किस तरह अहिंसा द्वारा विश्व के कलहों को शान्त करेंगे ? ॥ ५ ॥

श्री मोहन उवाच

सत्यमेष महान् प्रश्नो, गम्भीरो गहनस्तथा ।
परं नाहं निराशोऽस्मि, विश्वकल्याणसाधने ॥६॥

श्री मोहन ने कहा

सत्य है, यह प्रश्न महान् है, गम्भीर तथा गहन है। परन्तु मै विश्व-कल्याण की साधना मे निराश नहीं हूँ ॥ ६ ॥

भूयांसः समरा घोराः, वर्तमाना निरन्तरम् ।
विशदं द्योतयन्त्येते, हिंसाया निर्बलं बलम् ॥७॥

निरन्तर होने वाले अनेक घोर युद्ध हिंसा के निर्बल बल को स्पष्ट रूप मे प्रकट करते हैं ॥ ७ ॥

"नहि वैरेण वैराणि, शाम्यन्तीह कदाचन" ।
सेयं भगवतो वाणी, यथार्थाद्यापि वर्तते ॥८॥

"वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते"—यह भगवान् की वाणी आज भी यथार्थ है ॥ ८ ॥

अवैरेणैव युद्धानां, शान्तिर्लोके भविष्यति ।
हन्तैषा पावनी वाणी, निष्क्रियाद्यापि तिष्ठति ॥९॥

अवैर से ही युद्धों की समाप्ति संसार में हो सकेगी। शोक ! यह पवित्र वाणी आज भी निष्क्रिय रूप में विद्यमान है॥ ६ ॥

भवेयं भाग्यवान् कच्चिदवैरस्थापने भुवि ।
अहिंसां सक्रियां कर्तुमाहर्तुं लोकमङ्गलम् ॥१०॥

शायद मैं पृथ्वी पर अवैर अथवा शान्ति स्थापित करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूं ? शायद मैं अहिंसा को सक्रिय बना सकूं, और विश्व-मङ्गल का सम्पादन कर सकूं ? ॥ १० ॥

राजेन्द्र उवाच

यदि त्वग्रेसरः कश्चित्, कुर्यादाक्रमणं रिपुः ।
निष्कारणं तदापि त्वं, किमहिंसां प्रशंससि। ।११॥

राजेन्द्र ने कहा

यदि कोई शत्रु अग्रसर होकर निष्कारण आक्रमण करदे, तो क्या तब भी आप अहिंसा की प्रशंसा करते है ? ॥ ११ ॥

श्रीमोहन उवाच

नाहं पश्याम्यहिंसातः, आक्रान्तुरन्तकृत्तरम् ।
अहिंसा शोणिताकाङ्क्षा—शमयित्री रिपोरपि ॥१२॥

मोहन ने कहा

मैं अहिंसा से बढ़ कर आक्रान्ता का नाश करने वाला और कुछ नहीं देखता । अहिंसा शत्रु के खून की प्यास को भी बुझा देने वाली है ॥ १२ ॥

आक्रामन्निपतंच्छत्रुः स्वदेशान्तः समाविशन् ।
प्रतिरोध्यो न शस्त्रास्त्रैर्न वा रक्तप्रवाहणैः ॥१३॥

आक्रमण करता हुआ, देश में प्रविष्ट होता हुआ, उस पर टूटता हुआ भी शत्रु, शस्त्रास्त्रों से नही रोका जाना चाहिए, न खून बहाने से ॥ १३ ॥

सहयोगाप्रदानेन, तिरस्कार्यः स केवलम् ।
नृशंसस्य वहिष्कारो, वलीयो मूकदण्डनम् ॥१४॥

उसका तो सहयोग न देने मात्र से तिरस्कार करना चाहिए। आततायी का वहिष्कार ही उसके लिए बलवान् मूक दण्ड के समान है ॥ १४ ॥

नैतस्याक्रमणे कश्चिन्न वा देशस्य शासने ।
उत्पत्तौ वा पदार्थानां, विदधीत सहायताम् ॥१५॥

उसके आक्रमण मे, अथवा देश के शासन में, अथवा पदार्थों की उत्पत्ति मे कोई सहायता न करे ॥ १५ ॥

निस्सहायो निरालम्बो, जनतातितिरस्कृतः ।
न शक्त. कश्चन स्थातुं, शासितु तु पुनः कथम् ॥१६॥

निस्सहाय, निराश्रय, जनता से वहिष्कृत, कोई (आक्रान्ता) एक दिन भी देश में ठहर नहीं सकता, उसमे शासन करने का तो क्या कहना ? ॥ १६ ॥

एवं हृदयहीनोऽपि, नृशंसो हिंसकाधमः ।
अहिंसायाः प्रयोगेण, पातितः स्यात्तु भूतले ॥१७॥

इस तरह हृदयहीन निर्दय अधम हिंसक भी अहिंसा के प्रयोग से पृथ्वी पर गिरा दिया जा सकता हैं ॥ १७ ॥

यथा शाम्येत् स्वयं शीत-सलिले पतितोऽनलः ।
तथा नृशंसता शाम्येदहिंसामृदुमानसे ॥१८॥

जैसे शीतल जल पर गिरी हुई अग्नि स्वयं शान्त हो जाती है, इसी तरह अहिंसा से कोमल चित पर नृशंसता शान्त हो जाती है ॥ १८ ॥

नैष मार्गः सुराणां हि, देवलोकनिवासिनाम् ।
मनुष्याणामिमं वच्मि, मर्त्यलोकनिवासिनाम् ॥१६॥

यह मार्ग देवलोक-वासी देवताओं का ही नहीं। मै इसे मर्त्यलोक-वासी मनुष्यो का भी बतलाता हूँ ॥ १६ ॥

रुधिरप्लावनश्रान्ताः, हिंसाव्यापारपीडिताः ।
अहिंसां संश्रयिष्यन्ति, निराशाः शान्तिमीप्सवः ॥२०॥

रुधिर बहाने से शान्त हुए २, हिंसा के व्यापार से पीड़ित होकर, शान्ति की कामना वाले, निराश लोग अहिसा के मार्ग का आश्रय लेंगे ॥ २० ॥

दवीयान्न त्वसौ कालो, विश्वकल्याणकारकः ।
कलहाः प्रशमिष्यन्ति, शान्तिर्लोके लसिष्यति ॥२१॥

वह विश्वकल्याण-कारक समय दूर नहीं है, जब सब कलह शान्त हो जाएँगे और संसारमें शान्ति का राज्य होगा ॥ २१ ॥

जातयो जातिभिर्जातु, देशा देशैः जना जनैः ।
अहिंसामन्त्रमुग्धास्तु, न द्वेक्ष्यन्ति परस्परम् ॥२२॥

जातियां जातियो से, देश देशो से, मनुष्य मनुष्यो से अहिसामन्त्र से मुग्ध हुए २, परस्पर द्वेष नहीं करेंगे ॥ २२ ॥

राजेन्द्र उवाच

अल्पबुद्धिरहं देव, दूरं शक्तो न वीक्षितुम् ।
पश्यामि केवलं दूरादाशारेखां कृशीयसीम् ॥२३॥

राजेन्द्र ने कहा

हे देव ! मैं अल्पबुद्धि हूं, दूर नहीं देख सकता । मै दूर से केवल क्षीण सी आशा की रेखामात्र देखता हूँ ॥ २३ ॥

अहिंसा विश्वशान्त्यास्तु. सम्भवं साधनं भवेत् ।
तया राष्ट्रान्तरप्रान्त-शान्तिश्चेत् सम्भवा भवेत् ॥२४॥

अहिंसा विश्वशान्ति का साधन सम्भव हो सक्ती है, यदि उससे राष्ट्र के अन्दर प्रान्तों में भी शान्तिस्थापना की सम्भावना होसके ॥२४।

प्रत्यहं क्रियमाणानां, कर्मणामपराधिनाम् ।
दमनाय कथं हिंसा-प्रयोगं नाभिनन्दसि ॥२५॥

प्रतिदिन किए जाते हुए अपराधियों के अपराध-कर्मों के दमन के लिए क्या तुम हिंसा के प्रयोग को पसन्द नहीं करते ? ॥ २५ ॥

प्रजाजीवनरक्षार्थं, रक्षार्थे लोकसम्पदाम् ।
शासनं राष्ट्रसंस्थाया., कथं हिंसां विना भवेत् ॥२६॥

जनता के जीवन की रक्षा के लिए, तथा लोगों की सम्पत्ति की रक्षा के लिए, राष्ट्र का शासन विना हिंसा के किस तरह हो सकता है ? ॥२६॥

श्री मोहन उवाच

राजेन्द्र ! राजनीतिज्ञ ! राष्ट्रचिन्ताविशारद !
नाहं पश्यामि ते चिन्ता-निमित्तं किञ्चनाप्यहम् ॥२७॥

श्री मोहन ने कहा

हे राजनीतिज्ञ, राष्ट्र-चिन्ता में निपुण राजेन्द्र ! मैं तेरी चिन्ता का थोड़ा भी कारण नहीं देखता ॥ २७ ॥

राष्ट्रं नैवावगच्छामि, केवलं दण्डनात्मकम् ।
प्रजायाः शासनं हिंसा-मनादृत्यापि सम्भवम् ॥२८॥

राष्ट्र को केवल मैं दण्डनात्मक नहीं समझता । प्रजा का शासन हिंसा का अनादर करके भी सम्भव है ॥ २८ ॥

दण्डश्च द्विविधः प्रोक्तः, शोधकः प्रतिशोधकः ।
प्रथमः शोधनार्थैव, पापिनो मलिनात्मनः ॥२६॥

दण्ड दो प्रकार का कहा गया है—शोधक तथा प्रतिशोधक । प्रथम मलिनात्मा पापी के शोधन के लिए ही है ॥ २६ ॥

प्रतिशोधकदण्डस्तु, प्रतिशोधधियोत्थितः ।
प्रतिहिंसासमाविष्टो, राष्ट्रकल्याणघातकः ॥३०॥

प्रतिशोधक दण्ड तो बदले की बुद्धि से उठता है । वह प्रतिहिंसा से युक्त होता है तथा राष्ट्र के कल्याण का नाश करने वाला होता है ॥ ३० ॥

तयोस्तु शोधको दण्डः, सभ्यदेशोचितो मतः ।
तमेव स्थापितं सद्यो, दिदृक्षेऽहं महीतले ॥३१॥

उन दोनो में शोधक दण्ड सभ्य देशों के योग्य माना जाता है । उसी को मैं शीघ्र संसार में स्थापित हुआ देखना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥

तदर्थं न महासेना, महदन्तर्बलं न वा ।
आवश्यकं समाजाय, पापविजयकाङ्क्षिणे ॥३२॥

उसके लिए पाप पर विजय की इच्छा वाले समाज में न बड़ी सेना की, न बहुत पुलिस शक्ति की आवश्यकता है ॥ ३२ ॥

महत्यः सर्वदेशेषु, सन्नद्धाः शस्त्रसज्जिताः ।
पृतनाः सञ्चितोत्कर्षाः, युद्धवन्हिप्रदीपिकाः ॥३३॥

सब देशों में बड़ी २ शस्त्रों से सज्जित, सन्नद्ध सेनाएं, उत्कर्ष का सञ्चय करती हुईं, युद्ध की अग्नि को प्रदीप्त ही करने वाली होती हैं ॥ ३३ ॥

निश्शस्त्रीकरणं तासामहिंसादीक्षितात्मनाम् ।
केवलं बलवन्मन्ये, विश्वकल्याणसाधनम् ॥३४॥

उन (सेनाओं) का, अहिंसा में दीक्षित करके, निःशस्त्रीकरण ही मैं केवल बलवान्, विश्व के कल्याण का साधन समझता हूँ ॥ ३४ ॥

परराष्ट्रं तु संवीक्ष्य, भृशं युद्धपराङ्मुखम् ।
नान्यराष्ट्रं मुधा योद्धुमुत्सहते कदाचन ॥३५॥

दूसरे राष्ट्र को सर्वथा युद्ध से पराङ्मुख देखकर कोई राष्ट्र व्यर्थ में कभी युद्ध करने का साहस नहीं करता ॥ ३५ ॥

निपतन् पतितात्मा तु, निरीहे च निरायुधे ।
भाजनं लोकगर्हायाः, सर्वैः सम्भूय पात्यते ॥३६॥

निरपराध, निःशस्त्र पर आक्रमण करता हुआ, पतितात्मा पापी लोक-निन्दा का ह्ं पात्र बनता है. और सबसे मिल कर गिरा दिया जाता है ॥ ३६ ॥

एवमेव निरस्त्रासु, निर्बलासु प्रजासु च ।
पशुशक्ति प्रयुञ्जानो, गर्हणीयो हि शासकः ॥३७॥

इसी तरह निरस्त्र, निर्बल प्रजाओं पर पशु शक्ति का प्रयोग करता हुआ शासक निन्दा के योग्य होता है ॥ ३७ ॥

अन्तःकलहकालेऽपि, वरं प्राणविसर्जनम् ।
शान्तिरक्षाकृते नैव, शस्त्रसञ्चालनं पुनः ॥३८॥

देश के अन्दर भी (साम्प्रदायिक) कलहों के समय, प्राणों का त्याग देना अच्छा है, शान्ति रक्षा के लिए, परन्तु शस्त्रों का चलाना अच्छा नहीं ॥ ३८ ॥

यदि कतिपये वीराः, एवं प्राणान् सिसृक्षवः ।
देशशान्तिं हि रक्षन्ति, विश्वशान्तिस्ततो ध्रुवा ॥३९॥

यदि कुछ वीर प्राणों का त्याग करके भी देश की शान्ति की इस

तरह रक्षा कर सकें तो उससे विश्वशान्ति भी निश्चित है ॥ ३९ ॥

दुर्धर्षं सुदुरामर्षमहिंसाजनितं बलम् ।
हिंसका नैव जानन्ति, यदस्यान्तर्हितं हितम् ॥४०॥

अहिंसा से उत्पन्न होने वाला बल अतितीव्र एवं दुर्निवार्य होता है । हिंसक लोग नहीं जानते जो इसमें हित अन्तर्निहित है ॥ ४० ॥

अहिंसा निष्क्रिया नैव, प्रक्रिया शक्तिशालिनी ।
नेयं निवृत्तिरूपास्ति, प्रवृत्तिः परमा मता ॥४१॥

अहिंसा अकर्मण्यता का नाम नहीं, यह तो शक्तिशालिनी क्रिया का नाम है । यह निषेधात्मक निवृत्ति का रूप नहीं, अपितु विध्यात्मक प्रवृत्ति का रूप है ॥ ४१ ॥

शुष्मं शौर्य सहः स्थाम, विक्रमश्च पराक्रमः ।
अन्तर्गतानि सर्वाणि त्वहिंसाया बलोत्तमे ॥४२॥

शुष्म, शौर्य, सहस्, स्थाम, विक्रम, पराक्रम—ये सब बल के प्रकार अहिंसा के उत्तम बल में अन्तर्गत हैं ॥ ४२ ॥

श्रद्धयाऽध्यवसायेन, जगत्कल्याणकारिणी ।
अहिंसा देवता शक्या, सा प्रसादयितुं नरैः ॥४३॥

मनुष्यों द्वारा जगत्कल्याण करने वाली अहिंसा देवता श्रद्धा एवं अध्यवसाय से प्रसन्न की जा सकती है ॥ ४३ ॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायामहिंसाप्रयोगो
नाम तृतीयोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में
अहिंसाप्रयोग नाम तृतीय अध्याय
समाप्त

चतुर्थ अध्याय

राजेन्द्र उवाच

सुरत्वसम्पदं सत्यं, यदाहाहिंसया सह ।
अहिंसाव्रतिनः श्वास-समं मोहन तत्कथम् ॥१॥

राजेन्द्र ने कहा

हे मोहन ! जो आपने अहिंसा के साथ, सत्य को दैवी सम्पत्ति रूप से बतलाया और अहिंसाव्रती के श्वास के समान कहा, यह कैसे है ? ॥१॥

श्रीमोहन उवाच

सत्यं तन्नित्यसत्यं यत्, सदा सन्नासदेव यत् ।
नानृतं विजयस्तस्मात्तस्य लोके सुनिश्चितः ॥२॥

श्री मोहन ने कहा

सत्य वह है जो नित्य सत्य है, वह सदा सत् ही है असत् कभी नहीं। वह कदापि अनृत नहीं—अतः उसका संसार में सदा विजय निश्चित है ॥ २ ॥

असत्यं तु पुनर्नित्यमसत्यमसदेव तत् ।
सानृतं निश्चितस्तस्मात्, सदा तस्य पराजयः ॥३॥

असत्य तो फिर नित्य असत्य एव असत् होता है । वह अनृत होता है— अतः उसका पराजय निश्चित है ॥ ३ ॥

अहिंसा सत्यमेवास्ति, प्रकृतेः प्राकृतो गुणः ।
विकारजा पुनर्हिंसा, सद्रूपा सा कथं भवेत् ॥४॥

अहिंसा सत्य ही है । यह प्रकृति का स्वाभाविक गुण है । विकार से उत्पन्न हिंसा तो सत्य का रूप कैसे हो सकती है ? ॥ ४ ॥

सत्याहिंसे मम प्राणाः, मम श्वासाश्च जीवनम् ।
तयोः सम्पादने कच्चित्, सफलं जन्म मे भवेत् ॥५॥

सत्य और अहिंसा मेरे प्राण हैं । मेरे श्वास और जीवन हैं । उन्हीं की सिद्धि मे शायद मेरा जीवन सफल हो सके ॥ ५ ॥

बाल्यात्प्रभृति सत्यस्यान्वेषणं धर्ममुत्तमम् ।
अनुतिष्ठंश्चिकीर्षामि, सार्थकं जीवनं मम ॥६॥

बचपन से लेकर, सत्यान्वेषण के उत्तम धर्म का अनुष्ठान करते हुए, मै अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

अप्युत्सर्गेण कायस्य, हिंसाशमनमुत्तमम् ।
उद्दिधीर्षामि सद्धर्मं, सत्याहिंसाप्रतिष्ठितम् ॥७॥

शरीर के बलिदान से भी हिंसा को शान्त करने वाले, सत्य और अहिंसा पर आश्रित उत्तम धर्म का मै उद्धार करना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

सत्यमाराध्यदेवो मे, सर्वसिद्धिफलप्रदः ।
तस्यार्चना सपर्या च, धर्मः प्रियतमो मम ॥८॥

सत्य मेरा आराध्य देव है । वही सब सिद्धियो का फल देने वाला है । उसी की अर्चना और पूजा मुझे अभीष्टतम धर्म है ॥ ८ ॥

सत्यमीश्वर आख्यातः, ईश्वरः सत्यमेव च ।
अभेदमेव मन्येऽहं, तयोर्हि सत्स्वरूपयोः ॥९॥

सत्य ईश्वर कहा जाता है । ईश्वर सत्य कहा जाता है । मै सत्स्वरूप

दोनों में अभेद मानता हूँ ॥ ९ ॥

तस्यात्मा पतितो नूनं, सत्याद्विचलितस्तु यः ।
ईश्वरात् स परिभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥१०॥

उसकी आत्मा तो पतित है, जो सत्य से विचलित हो गया है । ईश्वर से च्युत हुआ २ छिन्न भिन्न बादल की तरह नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

सत्यं ज्योतिस्तमोऽसत्यं, सत्यममृतमुत्तमम् ।
असत्यं मृत्युमार्गोऽस्ति, श्रेयः स्वं वृणुयान्नरः ॥११॥

सत्य ज्योति है, असत्य अन्धकार है । सत्य उत्तम अमृत है । असत्य मृत्यु का मार्ग है । मनुष्य अपनी भलाई का स्वयं वरण कर ले ॥ ११ ॥

सत्यं तु भगवान् लोके, भक्तानां भाग्यशालिनाम् ।
प्रादुर्भावन् हृदन्तेपु, स्वप्रेमाणं प्रयच्छति ॥१२॥

भगवान् सत्य संसार में भाग्यशाली भक्तो के हृदयो में प्रादुर्भूत होकर अपने प्रेम को देता है ॥ १२ ॥

प्रेम्णा वलवता तेन, समाविष्टोऽवशो नरः ।
संसारहितचिन्तायां, यथार्थायां प्रवर्तते ॥१३॥

उस वलवान् प्रेम से भरा हुआ मनुष्य विवश होकर संसार के सच्चे हित-चिन्तन मे प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥

न सत्यान्वेषकः कश्चित्, स्वार्थसंसक्तमानसः ।
परमार्थप्रियोऽसौ तु, परार्थचिन्तने रतः ॥१४॥

सत्य का अन्वेषण करने वाला व्यक्ति स्वार्थलिप्त मन वाला नहीं

हो सकता। वह तो परमार्थ से प्रेम रखता है और परार्थचिन्तन में रत रहता है ॥ १४।

मनुष्यजातिसेवां सः, दरिद्रदुःखनाशनम्।
विश्वप्रेमप्रसारञ्च, सत्यार्चनां विबुध्यते ॥१५॥

उसकी दृष्टि मे मानव-सेवा, पर-दुःख-निवारण तथा विश्वप्रेम का फैलाना ही ईश्वर-भक्ति है ॥ १५।

राजेन्द्र उवाच

यत्स्वरूपं तु सत्यस्य, सूक्ष्मं व्याख्यासि मोहन।
सतां योग्यं न सामान्य-जनयोग्यं सुदुष्करम् ॥१६॥

राजेन्द्र ने कहा

हे मोहन! जिस सत्य के सूक्ष्म स्वरूप का आप व्याख्यान करते हैं—वह तो सन्त महात्माओ के योग्य है, सामान्य लोगो के योग्य तो नहीं—वह तो अति दुष्कर है ॥ १६॥

सत्यं वाग्विषयः प्रोक्तः, आप्तै मन्वादिभिः पुरा।
जनसाधारणो धर्मस्तत्कथं वेत्सि मोहन ॥१७॥

मनु आदि आप्त पुरुषो द्वारा तो सत्य वाणी का विषय बतलाया गया है। यह जनसाधारण धर्म कहा गया है। हे मोहन! आप इसे कैसे जानते हैं? ॥ १७॥

श्री मोहन उवाच

सत्यं, वाग्विषयः सत्यं, मुनिभिर्यत्प्रकीर्तितम्।
परं मन्येऽधिकं सत्यं, हृदयस्यापि भूषणम् ॥१८॥

श्री मोहन ने कहा

ठीक है, सत्य वाणी का विषय है, जैसा मुनियों और ऋषियों ने

कहा है। परन्तु मैं इससे अधिक सत्य को हृदय का भूषण भी मानता हूँ ॥ १८ ॥

हृदयं सर्वभावानां, जनिभूः सर्वकर्मणाम् ।
हृदयात्प्रसरन्त्येव, सरितः सुकृतैनसाम् ॥१६॥

हृदय सब भावों की और सब कर्मों की जन्म-भूमि है। हृदय से ही पुण्य और पाप की नदियां बहती हैं ॥ १६ ॥

अनृताद्विरतिः सत्यं, केवलं न गिरां गुणः ।
मनसा कर्मणा वाचा, सम्यगाचरणं हि तत् ॥२०॥

असत्य से निवृत्ति रूप सत्य केवल वाणी का गुण नहीं है। मन, वचन, कर्म से शुभ आचरण करना ही वस्तुतः सत्य है ॥ २० ॥

यच्चिन्तयति चित्तेन, वाचा वक्ति तदेव तु ।
करोति क्रियया चापि, तत्सत्याचरणं स्मृतम् ॥२१॥

मनुष्य जो चित्त से चिन्तन करे, वाणी से वही बोले और क्रिया द्वारा उसी का अनुष्ठान करे—यही सत्याचरण कहा जाता है ॥ २१ ॥

सत्यव्रती हृदन्तस्थ-परमात्मनि संश्रितः ।
शृणोति शाश्वतं तस्य, श्रद्धया नीरवं रवम् ॥२२॥

सत्य व्रत का पालन करने वाला हृदयस्थित परमात्मा पर आश्रित हुआ २, श्रद्धापूर्वक उसके नीरव शब्द को निरन्तर सुनता रहता है ॥ २२ ॥

तेनैव प्रेरितो धीमान्, कर्मणि संशयास्पदे ।
विवेकनिर्मलां शुद्धां समाप्नोत्यवधारणाम् ॥२३॥

उसी से प्रेरित हुआ २ बुद्धिमान् संशयास्पद कर्म में, विवेक से निर्मल शुद्ध निश्चयात्मक बुद्धि को प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

निर्भयः स च धर्मात्मा, द्वन्द्वातीतो जितेन्द्रियः ।

सहते सुखदुःखानि, हसन् सत्यस्य रक्षणे ॥२४॥

वह धर्मात्मा निर्भय होकर, द्वन्द्वों में अनासक्त हुआ २, जितेन्द्रिय, सत्य की रक्षा में तत्पर, हंसता हुआ,सुख दुःखों को सहन करता है ॥२४॥

सत्यप्रेम्णावजानाति, पितरं कुपथस्थितम् ।

अपि त्रैलोक्यराज्यस्य, भोगात् प्रच्यावितो भवेत् ॥२५॥

सत्य के प्रेमवश, कुमार्गगामी पिता की भी वह अवज्ञा करता है, यद्यपि ऐसा करने से वह त्रिलोकी के राज्य से भी च्युत क्यों न कर दिया जाए ॥२५॥

प्रह्लादो जगदाह्लादः, सत्यवाग् विश्वविश्रुतः ।

अवमेने पथभ्रष्टं, हिरण्यकशिपुं यथा ॥२६॥

जैसे विश्व-विख्यात, सत्यवक्ता, जगत् को आह्लाद देने वाले प्रह्लाद ने पथभ्रष्ट पिता हिरण्यकशिपु की अवहेलना की ॥२६॥

असिधाराव्रतं क्लिष्टं, सत्यमचलनात्मकम् ।

चलितस्तु हि पापीयान्नधिकं पापमृच्छति ॥२७॥

सत्य तो तलवार की धार के समान कठोर व्रत है। विचलित न होकर इसका पालन करना आवश्यक होता है। विचलित हुआ २ पापी तो अधिक पाप को प्राप्त होता है ॥२७॥

सद्वृत्तसाहसस्यैष, प्रकाशः सबलो हि यत् ।

नहीति कथनीयार्थे निर्भीकःकथन 'नहि' ॥२८॥

यह सदाचार तथा साहस का बलवान् प्रकाश है जो 'नहीं' कहने योग्य विषय में निर्भीक होकर 'नहीं' कहा जाता है ॥२८॥

एवं दोषं विधायापि, दोषज्ञानमुपागतः ।

सत्यव्रती सदाचारः, स्वीकुर्याद्दोषमात्मनः ॥२६॥

इस तरह दोष करके भी, दोष का ज्ञान हो जाने पर सत्यव्रती सदाचारी व्यक्ति अपने दोष को स्वीकार करले ॥२६॥

नैतस्मिंल्लघुता काचिन्महत्त्वैव महोदया ।
सत्यमुद्ध्रियमाणं वै, पुष्णाति सत्यवादिनम् ॥३०॥

उसमें कोई छोटापन नहीं, फलदायक बड़प्पन ही है। उद्धार किया जाता हुआ सत्य, सत्यवादी को प्रफुल्लित ही करता है ॥३०॥

सर्वदा सर्वथा चैव, सत्यग्राही भवेन्नरः ।
काञ्चनं यत्र कुत्रापि, विवेकी चिनुयाद् यथा ॥३१॥

मनुष्य सदा सब तरह सत्य का ग्रहण करने वाला बने, जैसे विवेकी व्यक्ति जहाँ कहीं से सोने का सञ्चय करता है ॥३१॥

अज्ञानेनावृतं सर्वमन्धकारमयं तथा ।
माययाऽविद्यया चैव, सत्यस्यापिहितं मुखम् ॥३२॥

सब संसार अज्ञान से आवृत तथा अन्धकारमय है। माया और अविद्या से सत्य का मुख ढका हुआ है ॥३२॥

आवरणमपाकर्तुं, सत्यमन्वेष्टुमेव च ।
प्रयतेत विशुद्धात्मा, सत्यधर्मदिदृक्षया ॥३३॥

आवरण को हटाने के लिए, सत्य का अन्वेषण करने के लिए विशुद्धात्मा सत्यधर्म के दर्शन की इच्छा से प्रयत्न करे ॥३३॥

सर्वधर्मानहं मन्ये, प्रथितान् भिन्नजातिषु ।
प्रफुल्लकुसुमानीव, नानारूपाणि सर्वतः ॥३४॥

भिन्न २ जातियों मे प्रचलित सब धर्मों को मै विकसित फूलो के समान समझता हू—जो नाना रंगों मे सब तरफ खिल रहे हैं ॥३४॥

वर्धयन्ति यथा तानि, वनोद्यानस्य रम्यताम् ।
नानाधर्मास्तथा नूनं, संसारोद्यानरम्यताम् ॥३५॥

जैसे वे उपवन की रमणीयता को बढ़ाते हैं। इसी तरह नाना धर्म संसार के उपवन की रमणीयता को बढ़ाते हैं ॥३५॥

भ्रमरश्च यथा भ्राम्यन् पुष्पाणां चिनुते मधु ।
आदत्ते सर्वधर्माणां, सत्यं सत्यव्रती तथा ॥३६॥

भौंरा जैसे घूमता हुआ फूलो के मधु को चुनता है। वैसे सत्यव्रती व्यक्ति सब धर्मों के सत्य को ग्रहण करता है ॥३६॥

एवं सक्त. स्वधर्मेऽपि, सर्वधर्मप्रियो नरः ।
मार्गयन् सत्यमार्गं स, मृदुशान्तश्च तिष्ठति ॥३७॥

इस तरह अपने धर्म मे भी सक्त हुआ २ मनुष्य सब धर्मों से प्रेम करने वाला बन सकता है। वह सत्यमार्ग का अन्वेषण करता हुआ—कोमल एवं शात होकर ठहरता है ॥३७॥

वीक्षते सादरं सर्वानन्यधर्मप्रवर्तकान् ।
सहते मतभेदांश्च, स स्वस्वधारणाबलात् ॥३८॥

वह अन्य सब धर्मों के प्रवर्तको को आदर के साथ देखता है और मतभेदो को सहन करता है—क्योंकि वे अपने २ विश्वास के बल पर स्थित होते हैं ॥३८॥

अवगच्छामि धर्मस्य, स्वरूपं धारणात्मकम् ।
ऋषिभिः पूर्वजैः प्रोक्तं, वैयक्तिकमनुत्तमम् ॥३९॥

मैं धर्म के स्वरूप को धारणात्मक समझता हूँ। पूर्वज ऋषियों ने भी इसे उत्तम वैयक्तिक वस्तु बतलाया है ॥३९॥

स एप मूकसम्वन्धो, जीवात्मपरमात्मनोः।
न वाचां विपयो धर्मः, केवलं तु क्रियात्मक. ॥४०॥

यह (धर्म) जीवात्मा और परमात्मा के परस्पर मूक सम्बन्ध का नाम है। धर्म वाणी का विषय नहीं है—यह तो केवल आचरण का विषय है ॥४०॥

एवं तु पालयन् धर्म, प्रयतात्मा विशुद्धधीः।
स सत्यपरमात्मानं, स्वयं साक्षात्करोति तम् ॥४१॥

इस धर्म को पवित्रात्मा विशुद्धबुद्धि व्यक्ति पालन करता हुआ सत्यस्वरूप परमात्मा का स्वयं साक्षात्कार करता है ॥४१॥

पत्नीं पुत्रानथ प्राणानपि वा भारतं प्रियम्।
आराधनाय सत्यस्य, मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥४२॥

सत्य के आराधन के लिए पत्नी,पुत्र,प्राण एवं अपने प्रिय भारत को भी त्याग करते हुए मुझे दुःख नहीं ॥४२॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यामां सत्यमीमांसा नाम चतुर्थोध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में सत्यमीमासा नाम चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

पञ्चम अध्याय

राजेन्द्र उवाच

योऽयं सत्याग्रहः ख्यातो, नवीनो नव्यभारते ।
अन्यत्र चापि देशेषु, स किं बोधय मोहन ॥ १ ॥

राजेन्द्र ने कहा

यह जो सत्याग्रह नाम से नया सिद्धान्त नवीन भारत में तथा अन्य देशों में विख्यात है, हे मोहन ! वह क्या है, इसे आप समझाएं ॥१॥

श्री मोहन उवाच

नायं कश्चिन्नवीनोऽस्ति, भारतेऽन्यत्र चाश्रुतः ।
कुर्वे पुरातनं सत्यं, प्राचीनं तु क्रियात्मकम् ॥ २ ॥

श्री मोहन ने कहा

यह कोई नया सिद्धान्त नहीं है, जो भारत मे अथवा अन्यत्र सुना नहीं गया । मै तो प्राचीन एवं पुरातन सत्य को क्रियात्मक बनाने का यत्न कर रहा हूँ ॥ २ ॥

परपक्षमसत्यस्थं, स्वपक्षं सत्यसंश्रितम् ।
मत्वा सत्यस्य रक्षार्थं, यत्नः सत्याग्रहो मतः ॥ ३ ॥

दूसरे के पक्ष को असत्य पर ठहरा हुआ जानकर और अपने पक्ष को सत्य पर आश्रित हुआ मान कर, सत्य की रक्षा के लिए जो यत्न किया जाता है, वह सत्याग्रह है ॥ ३ ॥

स एष न परापेक्षः, स्वापेक्ष एव सर्वदा।
स्वयं दुःखसहस्राणां, सहनं नान्यपीडनम् ॥ ४ ॥

यह सत्याग्रह दूसरे की अपेक्षा नहीं करता, यह तो अपनी ही अपेक्षा करता है। इसमें स्वयं सहस्रों दुःखों को सहन किया जाता है। दूसरे को पीडा नहीं दी जाती ॥ ४ ॥

दुःखानि सहमानस्य, वरं प्राणविसर्जनम् ।
परमन्यायिनोऽन्याय-स्वीकारो न कदाचन ॥ ५ ॥

दुःख सहन करते हुए प्राणों का त्याग देना अच्छा है. परन्तु अन्यायी के अन्याय को स्वीकार करना कदापि अच्छा नहीं ॥ ५ ॥

धर्मस्य च नयस्यापि, रक्षायै यः सदाग्रहः।
मूकमात्मबलेनैव, स हि सत्याग्रहः स्मृतः ॥ ६ ॥

धर्म और न्याय की रक्षा के लिए जो मूक आत्मिक बल से सच्चा आग्रह करना है—वह सत्याग्रह कहलाता है ॥ ६ ॥

तस्य सत्याग्रहस्याथ, चत्वारः संप्रकीर्तिताः।
स्कन्धाः सन्धायिनस्तस्य, विशदार्थप्रकाशकाः ॥ ७ ॥

उस सत्याग्रह के चार परस्पर सम्बद्ध, सिद्धान्त को स्पष्ट करने वाले स्कन्ध अथवा भाग हैं ॥ ७ ॥

अनृतं प्रथमः स्कन्धो, येनावृतमिदं जगत् ।
नूनमृतविपर्यासो, विवृद्धः पापनामकः ॥ ८ ॥

अनृत अथवा असत्य पहला स्कन्ध है, जिससे यह सारा जगत् आवृत है। पाप नामी असत्य ही सब तरफ फैला हुआ है ॥ ८ ॥

द्वितीयस्त्वनृतस्यास्य, विजयः पापनाशनः।
आवश्यकस्तथा श्रेयस्करः स्याज्जगतः कृते ॥ ९ ॥

दूसरा इस असत्य का विजय है, जो पाप को नाश करने वाला है। यह जगत् के लिए कल्याणकारक तथा आवश्यक है ॥ ६ ॥

हिंसा न साधनं तस्य, पापनाशस्य सर्वथा ।
पापानां वर्धयित्री सा, क्लेशानाञ्च तृतीयकः ॥ १० ॥

उस पाप को नष्ट करने के लिए हिंसा कोई साधन नहीं है। वह तो पापों को और क्लेशो को बढ़ाने वाली है। यह तीसरा स्कन्ध है ॥ १० ॥

अहिंसैव पुनः पाप-शमयित्री विशेषतः ।
अनृतोन्मूलने शक्ता, स्कन्ध एषश्चतुर्थकः ॥ ११ ॥

अहिंसा ही विशेष रूप से पाप को शान्त करने वाली है और अनृत को नष्ट करने में शक्त है। यह चौथा स्कन्ध है ॥ ११ ॥

सत्याग्रही सत्यपरः परेषां
दुःखानि सञ्चिन्तयति प्रबुद्धः ।
शान्तः सदा चैव मृदू रिपुभ्यो
नान्यायकार्यं सहते तु तेषाम् ॥ १२ ॥

सत्याग्रही सत्य पर तत्पर हुआ २, प्रबुद्ध होकर, दूसरो के दुःखों का चिन्तन करता है। वह सदा शान्त रहता है, और शत्रुओं के प्रति कोमल रहता है। वह उनके अन्याय-कार्यों को सहन नहीं करता ॥ १२ ॥

न्याय्यात्पथो नो विचलन् पदं स
शान्तिप्रियः शान्तिमहिंसयैव ।
धीरः सदा कामयतेऽनिराशः
श्रद्धां दधानस्तु नृणां सुरत्वे ॥१३॥

न्याय के मार्ग से एक कदम भी विचलित न होता हुआ, वह शान्ति-प्रिय (सत्याग्रही) धैर्यपूर्वक, निराश न होते हुए, मनुष्यों के दैवी गुणों

में श्रद्धा रखता हुआ अहिंसा द्वारा ही सर्वत्र शान्ति की कामना करता है ॥ १३ ॥

सत्याग्रहोऽपरं नाम, विशालस्नेहसम्पदः ।
नाहं जानामि संसारे, स्नेहेनाजेयमेव यत् ॥ १४ ॥

सत्याग्रह विशाल स्नेह सम्पत्ति का दूसरा नाम है। मैं संसार में ऐसा कुछ नहीं जानता, जो स्नेह से नहीं जीता जा सकता ॥ १४ ॥

नान्यान् दहति स्नेहाग्निर्दहत्यात्मानमेव हि ।
स्वयं तु दूयमानोऽपि, परांस्तु न दुनोति स. ॥ १५ ॥

स्नेह की अग्नि दूसरों को नहीं जलाती, अपने को ही जलाती है। अपने आप दुःखी होता हुआ भी, वह दूसरों को दुःखी नहीं करता ॥१५॥

नमयति नृशंसं वै, स चेत आततायिनः ।
मानवी प्रकृतिः प्रायः, सर्वत्राप्येकसदृशी ॥ १६ ॥

वह आततायी के निर्दय चित्त को भी कोमल बना देता है। मनुष्य की प्रकृति प्रायः सब जगह एक सदृश होती है ॥ १६ ॥

अभीष्टं यदि कस्यापि, भवेद्रक्तप्रवाहणम् ।
रक्तं स्यादात्मनस्तत्तु, न परस्य कदाचन ॥ १७ ॥

यदि किसी का खून बहाना अभीष्ट भी हो तो वह अपना ही खून होना चाहिए, किसी दूसरे का कदापि नहीं ॥ १७ ॥

सत्याग्रही सदा वेत्ति, मरणं मारणं नहि ।
महीयो मरणं मन्ये, मारणाद् बलवत्तरम् ॥ १८ ॥

सत्याग्रही सदा मरना जानता है, मारना नहीं। मै मरने को मारने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली समझता हूँ ॥ १८ ॥

मृत्युर्भीषयते नैव, सत्याग्रहव्रतस्थितम् ।
हसन् स सत्यरक्षार्थं, शूलमारोहति स्वयम् ॥ १६ ॥

सत्याग्रह व्रत मे स्थित व्यक्ति को मौत नही डरा सकती । वह तो सत्य की रक्षा के लिए स्वयं सूली पर चढ़ जाता है ॥ १६ ॥

सत्याग्रहचमूनाञ्च, मृत्युनिर्भयचेतसाम् ।
पुरः स्थातुं समर्था न, शक्तिः शक्तापि काचन ॥२०॥

मौत से निडर मन वाली सत्याग्रह की सेनाओं के सामने कोई बलवान् भी शक्ति ठहरने को समर्थ नहीं होती ॥ २० ॥

असिस्तासां क्षमाऽक्षुण्णाऽहिंसा च कवचं दृढम् ।
प्रहरंस्ता नृशंसात्मा, पतत्येव पराजितः ॥ २१ ॥

क्षमा उनकी तीक्ष्ण तलवार होती है । अहिंसा दृढ़ कवच । उन पर प्रहार करता हुआ अत्याचारी पराजित होकर गिर पड़ता है ॥ २१ ॥

सत्याग्रहस्य सेनानीः, शस्त्रहीनोऽपि शस्त्रवान् ।
निर्मूलं कुरुते शत्रुं, वैरमुन्मूल्य तद्धृदः ॥ २२ ॥

सत्याग्रह सेना का नायक शस्त्र हीन भी सशस्त्र होता है । वह शत्रु को, उसके हृदय से वैर को निकाल कर, निर्मूल कर देता है ॥ २२ ॥

एव सत्याग्रही नैव, स्वकं वेत्ति पराजयम् ।
विजयः सर्वदा तस्य, सर्वत्रापि सुनिश्चितः ॥ २३ ॥

इस तरह सत्याग्रही कभी अपनी हारको नही जानता । उसका विजय सदा, सब जगह, निश्चित होता है ॥ २३ ॥

भारतायापि मन्येऽहं, शस्त्रं सत्याग्रहं परम् ।
अमोघं सुप्रयोगञ्च, देशकालोचितं तथा ॥ २४ ॥

भारत के लिए भी मैं सत्याग्रह को परम शस्त्र समझता हूँ । यह इस

देश के लिए उचित, व्यवहार योग्य और अमोघ शस्त्र है ॥ २४ ॥

एतेनैव हि देशस्य, कल्याणं परमं मतम् ।
नहि सत्याग्रहाच्छ्रेयो, वीक्षे स्वातन्त्र्यसाधनम् ॥ २५ ॥

इसी से देश का परम कल्याण हो सकता है । सत्याग्रह से बढ़ कर मै अन्य स्वतन्त्रता का उत्तम साधन नहीं देखता ॥ २५ ॥

सहयोगाप्रदानेन, भद्रयावज्ञया तथा ।
शक्योऽन्यायो निराकर्तुं, यत्र कुत्रापि देशतः ॥ २६ ॥

सहयोग के न देने से अथवा भद्रावज्ञा से देश के सब स्थानों से अन्याय को दूर किया जा सकता है ॥ २६ ॥

सत्याग्रहप्रयोगोऽयं, प्रयुक्तः सन् परस्परम् ।
पीडितं पीडकञ्चैवोपकरोत्युभयं समम् ॥ २७ ॥

यह सत्याग्रह का प्रयोग परस्पर प्रयोग किया हुआ पीडित एवं पीड़ा देने वाले—दोनों को समान रूप मे उपकार करता है ॥ २७ ॥

नायं गुप्तप्रयोगोऽस्ति, शत्रोर्मानविमर्दकः ।
शत्रुर्न नाश्यतेऽनेन, शत्रुत्वं तस्य नाश्यते ॥ २८ ॥

यह कोई गुप्त प्रयोग नहीं, जिससे शत्रु के मान का मर्दन हो । इससे शत्रु नाश नहीं होता, उसका शत्रुत्व नाश होता है ॥ २८ ॥

सत्याग्रही स्वदेशस्य, मित्रं विश्वस्य चापि सः ।
दीनार्तिनाशनं श्लाघ्यं, ध्येयं तज्जीवितस्य च ॥ २९ ॥

सत्याग्रही अपने देश का तथा समस्त विश्व का मित्र होता है । उस के जीवन का प्रशस्य उद्देश दीनों का दुःख नाश करना होता है ॥ २९ ॥

श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां सत्यप्रयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में सत्यप्रयोग नाम पञ्चम अध्याय समाप्त ।

षष्ठ अध्याय

राजेन्द्र उवाच

सत्याग्रहप्रकारा ये, सम्मतास्ते परीक्षिताः।
तानहं श्रोतुमिच्छामि, समाजव्यक्तिशोभनान् ॥१॥

राजेन्द्र उवाच

सत्याग्रह के जो प्रकार आपसे स्वीकृत हैं और परीक्षा किये गए हैं, उन समाज और व्यक्ति के व्यवहारयोग्य प्रकारो को मै सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीमोहन उवाच

नाहं वेद्मि समग्रांस्तु, विशेषान् सर्वसम्मतान्।
प्रतिराष्ट्रं प्रतिव्यक्ति, विभिन्नान् देशकालतः ॥२॥

श्री मोहन ने कहा

मैं समस्त सर्वसम्मत प्रकारों को नहीं जानता। वे प्रतिराष्ट्र और प्रतिव्यक्ति, देश और काल के भेद से भिन्न भिन्न हैं ॥२॥

तथापि चतुरस्तस्य, प्रयोगान् स्वपरीक्षितान्।
सोपानानीव सत्यस्य, राजेन्द्र कथयामि ते ॥३॥

तो भी अपने द्वारा परीक्षित उसके चार प्रयोगों को, जो सत्य की सीढ़ी के समान हैं, हे राजेन्द्र, मै तुम्हें बतलाता हूँ ॥३॥

आद्यः सामोपचारोऽस्ति, स साम्नाऽनुनयेन च ।
विरोधिपरपक्षस्य, प्रयत्नोऽधर्मनाशने ॥४॥

पहला साम का प्रयोग है । वह साम अथवा अनुनय से विरोधी पक्ष के अधर्म को नियन्त्रित करने का यत्न करना है ॥४॥

धैर्यस्योदारतायाश्च, पराकाष्ठा त्वपेक्षिता ।
नहि सामप्रयोगे वै, प्रशस्ता स्याद् धृतिच्युतिः ॥५॥

इस प्रयोग में धैर्य एव उदारता को पराकाष्ठा की अपेक्षा होती है । साम के प्रयोग मे धैर्य का त्यागना प्रशंसनीय नही होता ॥५॥

यदि स्यान्निष्फलो यत्नः, साम्नोऽप्यनुनयान्वितः ।
तदैवान्यप्रयोगाणां, विधिः श्रेयस्करो मतः ॥६॥

यदि साम का अनुनययुक्त प्रयत्न निष्फल हो जाए, तभी अन्य प्रयोगों का अनुष्ठान श्रेयस्कर माना जाता है ॥६॥

अपि सामेतरान् योगान्, प्रयुञ्जानो धृतिव्रतः ।
पुनः सामप्रयोगाय, भवेद्रिपुषु तत्परः ॥७॥

साम से इन प्रयोगों को व्यवहार मे लाता हुआ भी धैर्यवान् सत्याग्रही अपने विरोधियों के प्रति फिर भी साम के प्रयोग के लिए उद्यत रहे ॥७॥

यावत्तु न भवेच्छत्रोर्हृदयपरिवर्तनम् ।
तावत् सत्याग्रही साम-साफल्यं नावगच्छति ॥८॥

जब तक विरोधी के हृदय का परिवर्तन न हो, जब तक सत्याग्रही साम के प्रयोग की सफलता नहीं समझता ॥८॥

सर्वथाऽसफले साम्नि, प्रयोगस्तु द्वितीयकः ।
प्रयोज्योऽसहयोगाख्यः, सहयोगनिवर्तनात् ॥९॥

साम के सर्वथा असफल हो जाने पर इसका प्रयोग, असहयोग नाम का, सहयोग देने को बन्द करने से, व्यवहार मे लाना चाहिए ॥९॥

यदि विरोधिना सार्धं, सहयोगो दृढो भवेत्।
तदपाकरणं जातु, तमधर्मान्निवारयेत् ॥१०॥

यदि विरोधी के साथ पहले घनिष्ठ सहयोग रहा हो, उसको बन्द कर देना, शायद, उसको अधर्म से निवृत्त कर दे ॥१०॥

विपक्षव्यवहारश्चेत, सहयोगनिवर्तनात्।
नितान्तं प्रतिरुद्धः स्यात् प्रयोगः स महाफलः ॥११॥

उस सहयोग के निवारण से यदि विरोधी का सब व्यवहार सर्वथा रुक जाए, तो वह प्रयोग महान् फल वाला होता है ॥११॥

स्वसाहाय्येन चेच्छत्रुर्वृथा पीडयते परान्।
असाहाय्यं तदा धर्मः, परमावश्यको मतः ॥१२॥

यदि अपनी सहायता देने से शत्रु व्यर्थ में दूसरोंको पीड़ा देता है,तब सहायता न देना ही परम आवश्यक धर्म माना जाता है। ॥१२॥

परमसहयोगस्य, दुष्प्रयोगोऽपि सम्भवः।
सत्याग्रही प्रयुञ्जीत, धर्मरक्षार्थमेव तत् ॥१३॥

परन्तु असहयोग का दुष्प्रयोग भी सम्भव है। अतः सत्याग्रही उसे धर्म की रक्षा के लिए ही प्रयोग करे। ॥१३॥

सत्याग्रहस्य सोपानं, तृतीयं सुपरीक्षितम्।
भद्रावज्ञेति विख्यातं, नृशंसान्यायनाशकम् ॥१४॥

सत्याग्रह का तीसरा सुपरीक्षित प्रकार भद्रावज्ञा नाम से विख्यात है। यह अत्याचारी के अन्याय को नाश करने वाला है ॥१४॥

सैषा सविनयो भङ्गः शास्तुरन्यायकारिणः।
विशेषनियमानां वा, सामान्यशासनस्य वा ॥१५॥

यह (भद्र वज्ञा) अन्यायकारी शासक के शासन का साधारणतया और उसके कानूनों का विशेषतया — सविनय भंग करना है ॥१५॥

ये पुनर्नियमा धर्म्याः, स्तेयादिदण्डनात्मकाः।
न तु तानवजानीत, जातु सत्याग्रहप्रियः ॥१६॥

जो कानून चोरी आदि अपराधों को दण्ड देने के लिए हैं और धर्म के अनुकूल हैं—उनकी सत्याग्रही व्यक्ति कभी अवहेलना न करे ॥१६॥

ये च साधारणा अन्ये, मार्गादिचलनात्मकाः।
तानपि नावमन्येत, जनताहितकारिणः ॥१७॥

और भी जो मार्ग पर चलने आदि के साधारण नियम हैं उनका भी, जनता के हितकारी होने के कारण, सत्याग्रही उल्लंघन न करे ॥१७॥

शासनं यन्नृशंसं स्याल्लोकासम्मतमेव च।
तस्यावज्ञां परं धर्मं, जानामि सुकृतं तथा ॥१८॥

जो शासन निर्दयतापूर्ण हो और लोगों द्वारा असम्मत हो, उसकी अवज्ञा को भी परम धर्म और पुण्य मानता हूँ ॥१८॥

नैवार्हं सहयोगस्य, शासनं तादृशं क्वचित्।
तस्य कराप्रदानेन, क्षयः क्षेमावहो भवेत् ॥१९॥

वैसा शासन सहयोग के कहीं योग्य नहीं होगा। कर न देने से उसका नाश करना कल्याणकारी होता है ॥१९॥

प्रजासत्तात्मकं यत्तु, तन्त्रं सन्मन्त्रणायुतम् ।
तत्र सविनयं भङ्गमङ्गीकुर्वे त्वसाम्प्रतम् ॥२०॥

जो शासन प्रजासत्तात्मक हो और सन्मन्त्रणा से युक्त हो उसके प्रति भी सविनय अवज्ञा करना मै अनुचित समझता हूं ॥२०॥

कुर्वन् सविनयं भङ्गमथान्यायस्य नीतिमान् ।
सहते वेदनास्तीव्रास्तपस्यन्निव तापसः ॥२१॥

नीतिनिपुण सत्याग्रही अन्याय को सविनय अवज्ञा करता हुआ, तपस्या करते हुए तपस्वी की तरह तीव्र वेदनाओं को सहन करता है ॥२१॥

हसन् कारागृहं याति, मृत्यो पतति वा मुखे ।
सत्याग्रही व्रजन्नग्रे, ध्रुवं पश्चान्न पश्यति ॥२२॥

सत्याग्रही हंसता हुआ जेल जाता है। मौत के मुंह में गिरता है। सत्याग्रही आगे चलता हुआ, कभी पीछे नहीं देखता ॥२२॥

वसन् कारागृहे वीरो, न विश्राममपेक्षते ।
अपि क्लिष्टश्रमश्रान्तः, शुष्काहारेण तुष्यति ॥२३॥

जेल मे रहता हुआ वह वीर विश्राम की अपेक्षा नही करता। अति क्लेशदायक परिश्रम से श्रान्त हुआ २ भी सूखे भोजन से सन्तुष्ट हो जाता है ॥२३॥

मान्यान् मानयते तत्र, सहते सहवासिनः ।
घोरापराधिनो दीनान्, दूनः सन्ननुकम्पते ॥२४॥

वहां वह मान्यो का मान करता है, सहवासी कैदियो को सहन करता है। घोर अपराधी, दीन व्यक्तियो को दुःखी होकर अनुकम्पा से देखता है ॥२४॥

अक्षम्योऽमानुषश्चेत्स्याद्, व्यवहारोऽधिकारिणाम् ।
दृढं प्रतिरुणद्ध्येव, स स्वसम्मानरक्षकः ॥२५॥

यदि अधिकारियों का व्यवहार अमानुषिक तथा अक्षम्य हो, तो वह अपने सम्मान की रक्षा करने वाला दृढ़ता से प्रतिरोध करता है ॥२५॥

परं क्रोधसमाविष्टोऽनिष्टं कामयते न सः ।
कस्यापि सर्वजन्तूनां, सत्याग्रही हितेच्छुकः ॥२६॥

परन्तु क्रोध से अभिभूत होकर वह किसी के अनिष्ट की कामना नहीं करता । सत्याग्रही, सब प्राणियों का हित चाहने वाला होता है ॥२६॥

तितिक्षते क्षमावांस्तु, रोषममर्षणस्य सः ।
व्यथ्यमानो वृथा चापि, नैव व्यथयते परान् ॥२७॥

वह क्षमाशील क्रोधी के क्रोध को सहन करता है । दुःखी किया जाता भी वह दूसरों को दुःख नहीं देता ॥२७॥

क्षुद्रै रज्ञैरनात्मज्ञैरपशब्दापितोऽपि सः ।
सहिष्णुर्दान्तचित्तो वै, नापशब्दांस्तु भाषते ॥२८॥

मूर्ख अनात्मज्ञ एवं क्षुद्र लोगों से अपशब्द कहा हुआ भी सहनशील, आत्मसयमी सत्याग्रही स्वयं अपशब्दों को नहीं बोलता ॥ २८ ॥

अशिष्टं स पुनः कञ्चिदादेशं पापदूषितम् ।
सद्धर्मप्रतिकूलं च, मनुते न कदाचन ॥२९॥

वह पापपूर्ण, अनुचित एवं धर्म के प्रतिकूल किसी शासन को कभी नहीं मानता ॥ २९ ॥

एवं देशस्य सेवां च, विश्वसेवां चिकीर्षति ।
समाजस्योपयोगित्वं, सौभाग्यं स्वीकरोति सः ॥३०॥

इस तरह वह देश की सेवा तथा विश्व की सेवा करना चाहता है। समाज के लिए उपयोगी बनने में वह अपना सौभाग्य समझता है ॥ ३० ॥

अधिकं योग्यमात्मानं, स्वव्रताय विधित्सति ।
सर्वस्वाहुतिदानेन, प्राणानपि सिसृक्षति ॥३१॥

वह अपने व्रत के पालन के लिए अपने आप को अधिक योग्य बनाने की चेष्टा करता है। सर्वस्व की आहुति देने की इच्छा से वह अपने प्राणों तक का बलिदान करना चाहता है ॥ ३१ ॥

वदामि योग्यतास्तस्य, सत्याग्रहिण उत्तमाः ।
अन्तरा ताः न शक्तःस्यान्महात्यागमुपासितुम् ॥३२॥

मै उस सत्याग्रही की उत्तम योग्यताओ का वर्णन करता हूं। उनके बिना वह महान् त्याग का आदर्श पूर्ण नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

आद्या द्रढीयसी श्रद्धा, सजीवा परमात्मनि ।
प्रभुरेकः परं ज्योतिर्भगवान् भूतभावनः ॥३३॥

प्रथम योग्यता भगवान् में दृढ़ सजीव श्रद्धा रखना है। प्रभु अद्वितीय परम ज्योति है और प्राणियों का कल्याण करने वाला है ॥३३

सत्याग्रहिण आधारः, स एव परमेश्वरः ।
तमेवाश्रित्य सत्यस्थः, प्रारभते गवेषणाम् ॥३४॥

सत्याग्रही का वही परमेश्वर आधार है। उसी का आश्रय करके, वह अन्वेषणा प्रारम्भ करता है ॥ ३४ ॥

स तत्सत्यमहिंसाञ्च, स्वधर्मं बोधति प्रियम् ।
श्रद्धधाति नरस्यापि, सुप्तसात्विकतागुणे ॥३५॥

वह उस सत्य और अहिंसा को अपना प्रिय धर्म समझता है। वह मनुष्य के प्रसुप्त सात्विक गुण मे विश्वास रखता है ॥ ३५ ॥

स्वतपश्चर्यया किञ्च प्रेम्णः पूर्णबलेन सः ।
सुप्तसात्विकता तस्य, प्रबुद्धां कर्तुमिच्छति ॥३६॥

अपनी तपस्या के बल से अथवा स्नेह की पूर्ण शक्ति से वह उसकी प्रसुप्त सात्त्विकता को प्रबुद्ध करना चाहता है॥ ३६ ॥

न हिंसया हि हिंसा स्याच्छान्ता लोके कदाचन ।
अहिंसयैव शान्ता स्यादिति विश्वसिति ध्रुवम् ॥३७॥

हिंसा से हिंसा संसार मे कभी शान्त नही होती, अहिंसा से ही शान्त होती है–ऐसा निश्चय रूप से विश्वास करता है ॥ ३७ ॥

भवेत् सत्याग्रही भूयश्चारित्र्ययोग्यतान्वितः ।
चरित्रेण विना किञ्चज्जगत्यां नोपपद्यते ॥३८॥

सत्याग्रही की अन्य योग्यता चरित्र-शीलता है। चरित्र के बिना जगत् मे कुछ नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥

स्वलक्ष्यपूर्तिमालक्ष्य, सर्वदा स समुद्यतः ।
भवेत् सम्पद्विमोक्षाय; त्यागाय जीवितस्य च ॥३९॥

अपने उद्देश की पूर्ति के लिए वह अपनी धन सम्पत्ति तथा जीवन तक का त्याग करने के लिए उद्यत रहता है ॥ ३९ ॥

चतुर्थी योग्यता तस्य, स्वभावसरलात्मता ।
स वेशमुद्धतं कृत्वा, दरिद्रान्नाभितापयेत् ॥४०॥

उसकी चौथी योग्यता स्वभाव की सरलता है। वह अपने वेश को उद्धत बना कर दरिद्रो को अभि-सन्तप्त न करे ॥४० ॥

परं दीनैकतां प्राप्तो, ग्राम्यवस्त्रनिषेवणात्।
दरिद्रान् स उपासीत, साक्षान्नारायणोपमान् ॥४१॥

परन्तु ग्रामीण वस्त्रो का सेवन करते हुए, गरीबों के साथ एक होने का यत्न करे। वह साक्षात् नारायण के रूप दरिद्रों की इस तरह उपासना करे ॥ ४१ ॥

किञ्च निर्व्यसनो नित्यं, शुद्धचित्तो भवेद् व्रती।
न सोढुं व्यसनी शक्तः, कष्टानि तु कदाचन ॥४२॥

सत्याग्रह-व्रती पुरुष नित्य व्यसनो से बचता हुआ शुद्धचित्त वाला होकर रहे। व्यसन-लिप्त व्यक्ति कभी कष्टो को सहन नहीं कर सकता ॥ ४२ ॥

अथ सत्याग्रही योग्यो, भवेन्नियमपालने।
शासनं निश्चितं स्वेन, पालयन्नावसीदति ॥४३॥

फिर सत्याग्रही को अनुशासन पालन करने की योग्यता होनी चाहिए। स्वयं निश्चित किये हुए अनुशासन का पालन करता हुआ व्यक्ति कभी हीन नही होता ॥ ४३ ॥

रक्षतश्चात्मसम्मानं, परेषां नियमानपि।
नावमानयते सैषा, सप्तमी योग्यता मता ॥४४॥

अपने सम्मान की रक्षा करने वाले, दूसरो के अनुशासन की भी वह कभी अवहेलना नहीं करता। यह उसकी सातवीं योग्यता मानी जाती है ॥ ४४ ॥

इत्थं सत्याग्रही योग्यो, लभते सिद्धिमुत्तमाम् ।
सत्यस्याराधने सक्तो जन्मसाफल्यमाप्नुते ॥४५॥

इस तरह सत्याग्रही योग्य हुआ २ उत्तम सिद्धि को प्राप्त होता है। सत्य के आराधन मे लगा हुआ, वह जन्म की सफलता को प्राप्त होता है॥ ४५ ॥

अहिंसायोगयुक्तात्मा, दृढं सत्यव्रतस्थितः ।
शाश्वतं चिन्तयन्नास्ते, विश्वनिःश्रेयसं यती ॥४६॥

वह यती सत्याग्रही सत्य-व्रत मे स्थित हुआ २, अहिंसायोग में युक्त होकर निरन्तर विश्व कल्याण का चिन्तन करता हुआ रहता है॥ ४६ ॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां सत्यप्रयोगो नाम षष्ठोऽध्याय.

इति श्रीमनमोहन गीता अथवा अहिंसा योग मे सत्यप्रयोग नाम षष्ठ अध्याय समाप्त

सप्तम अध्याय.

श्री मोहन उवाच

उपवासश्चतुर्थः स्यादुपायोऽनशनात्मकः ।
सत्यप्रयोगशालायां, कथितश्चरमो विधि. ।। १ ।।

श्री मोहन ने कहा

निराहार रहना अथवा उपवास रखना चौथा उपाय है। सत्य की प्रयोगशाला में यह अन्तिम विधि कही जाती है ।। १ ।।

न सर्वो वेत्ति विज्ञानमुपवासस्य वस्तुतः ।
दुरूहं दुष्करश्चैव, नातस्तं वृणुयाद् द्रुतम् ।। २ ।।

उपवास के वास्तविक विज्ञान को सब कोई नहीं जानता । यह दुर्बोध और कठिन है। इसलिए उसे जल्दी में मनुष्य वरण न करे ।। २ ।।

तदेतत् कृच्छ्रसाध्यं स्याद्, उपवासव्रतं भृशम् ।
व्रतिना तदनुष्ठेयमात्मशुद्धिमभीप्सता ।। ३ ।।

यह उपवास-व्रत अत्यन्त कठिनता से सिद्ध होने योग्य है । आत्मिक शुद्धि को चाहने वाला व्रती व्यक्ति इसका अनुष्ठान करे ।। ३ ।।

चेतसा प्रयतेनैव, निर्मलेनात्मना पुनः ।
मेध्यबुद्ध्या समाधेयः, स सत्यपरमेश्वरः ।। ४ ।।

विशुद्धचित्त से तथा निर्मल आत्मा एवं पवित्रबुद्धि द्वारा उस

सत्यस्वरूप परमात्मा का चिन्तन वा ध्यान करना चाहिए ॥ ४ ॥

अपेताज्ञानसंपूते, सुशान्त अन्तरात्मनि ।
भगवान् स परं ज्योतिः, परमात्मा प्रकाशते ॥ ५ ॥

अज्ञान के मिटने से पवित्र हुए २, शान्त अन्तरात्मा मे वह परम ज्योति परमात्मा प्रकाशित होते हैं ॥ ५ ॥

सत्याग्रहविधौ भूयः, उपवासं समाचरेत् ।
तमिमं चरमोपायं, परपक्षस्य शोधने ॥ ६ ॥

विरोधी पक्ष की शुद्धि के लिए, उपवास के इस अन्तिम उपाय को सत्याग्रह की विधि रूप में प्रयोग करे ॥ ६ ॥

यथा हि पावको वन्हिः, पुनाति सकलं जगत् ।
तथाशु शोधयत्यन्यमुपवासाशुशुक्षणिः ॥ ७ ॥

जैसे पावक अग्नि सारे जगत् को पवित्र करती है । इसी तरह उपवास की *अग्नि विरोधी को जल्दी शुद्ध कर देती है ॥ ७ ॥*

तपसा किन्न साध्यं स्यात्तपोमूला हि सिद्धयः ।
तपसैव सृजत्येनां, विश्वसृक् सृष्टिमुत्तमाम् ॥ ८ ॥

तप से क्या सिद्ध नहीं हो सकता । तप पर सब सिद्धिया आश्रित हैं, प्रजापति परमेश्वर तप द्वारा ही इस सुन्दर सृष्टि का सर्जन करता है ॥ ८ ॥

तपंश्च तपनो लोके, संपुष्णाति वनस्पतीन् ।
ततोऽन्नं जायते तस्माज्जगदेतत् प्रवर्तते ॥ ९ ॥

तपता हुआ सूर्य संसार में वनस्पतियो को सम्पुष्ट करता है । उनसे अन्न उत्पन्न होता है और उससे यह जगत् प्रवृत्त होता है ॥ ९ ॥

तपस्यन्ती पुनर्माता, मूकं प्रसववेदनाः ।
सहमाना मिमीतेऽसावीशप्रतिकृतिं शिशुम् ॥ १० ॥

तप करती हुई माता चुपचाप प्रसव-वेदनाओं को सहन करती हुई ईश्वर की प्रतिमा स्वरूप बच्चे का निर्माण करती है ॥ १० ॥

एवमेव तपंस्तीव्रमुपवासव्रतं चरन् ।
मञ्जुलं जनयत्यर्थं, वृजिनविजयात्मकम् ॥ ११ ॥

इस तरह सत्याग्रही तीव्र उपवास व्रत का अनुष्ठान करता हुआ, पाप के विजय रूप सुन्दर अर्थ को उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

अथ सत्याग्रहस्यास्य, नियमान्नयसंयुतान् ।
कतिचित्कथयाम्यत्र, व्यवहारनिदर्शकान् ॥ १२ ॥

अब मै इस सत्याग्रह के कुछ समुचित तथा इसके क्रियात्मक रूप को स्पष्ट करने वाले नियमों का वर्णन करता हूँ ॥ १२ ॥

उपवासप्रयोगोऽयं, साधीयान् व्यक्तिषु स्मृतः ।
समाजं प्रति सङ्क्रान्तो, न तथा फलवान् भवेत् ॥१३॥

उपवास का यह प्रयोग व्यक्तियों के प्रति समुचित कहा जाता है । समाज के प्रति आचरण किया हुआ यह इतना फलवान् नहीं होता॥१३॥

प्रयुज्येत पुनर्व्यक्तिं, प्रति नैवाविचारणात् ।
अत्यन्तविवशेनैव, प्रयोज्यः स्यादयं सदा ॥ १४ ॥

व्यक्ति के प्रति भी अविचार से इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए । अत्यन्त विवश होकर ही उसका प्रयोग करना उचित है ॥ १४ ॥

भर्तारं भ्रातरं भार्यां, मातरं पितरं प्रति ।
आत्मीयानन्यबन्धूंश्च, प्रयुक्तोऽयं प्रशस्यते ॥ १५ ॥

पति, भाई, पत्नी, माता, पिता एवं अन्य आत्मीय बन्धुओं के प्रति प्रयोग किया हुआ यह (उपवास) प्रशंसनीय होता है ॥ १५ ॥

गुरुं शिष्यं तथा मित्रं, नृपतिं मित्रवत् प्रियम् ।
समाजं स्नेहसम्बद्धं, प्रयुक्तश्चाभिनन्द्यते ॥ १६ ॥

गुरु, शिष्य, मित्र, मित्रवत् प्रिय राजा तथा स्नेह से सम्बन्धित संस्था के प्रति प्रयोग किया भी यह (उपवास) प्रशंसनीय होता है ॥१६॥

परमेतेऽप्यजानन्तः, उपवासस्य सूक्ष्मताम् ।
दयार्द्रहृदयाः सन्तो, विपत्त्रस्ता अनश्नतः ॥ १७ ॥

परन्तु ये सब भी उपवास की सूक्ष्म प्रक्रिया को न जानते हुए, दया से द्रवित-हृदय वाले होकर, उपवासी की विपत्ति से भयभीत हुए हुए—॥ १७ ॥

स्वीकुर्युराग्रहं तस्य, मिथ्याभीतिप्रभाविताः ।
अतो विवेकवान् भूत्वाऽचरेत् सत्याग्रही व्रतम् ॥ १८ ॥

मिथ्या भय से प्रभावित होकर उसके आग्रह को स्वीकार करलें। अतः सत्याग्रही व्यक्ति विवेकशील होकर ही उपवास-व्रत का आरम्भ करे ॥ १८ ॥

यदि राष्ट्रं स्वकीयं स्यादत्याचारपरिप्लुतम् ।
अधर्मान्यायसम्पृक्तमनाचारविगर्हितम् ॥ १९ ॥

यदि अपना राष्ट्र अत्याचारों से पीडित हो रहा हो, अधर्म और अन्याय का शिकार बन रहा हो, एवं अनाचार से निन्दित हो रहा हो ॥ १९ ॥

सोढुं सर्वमशक्तः स्यात्, पश्येन्नान्यां गतिं यदा ।
न्यायं स्थापयितुं देशे, निस्सहायो भवेद् यदा ॥ २० ॥

जब सत्याग्रही इस सबको सहन करने में अशक्त हो और दूसरी कोई गति न देखता हो और देश में न्याय की स्थापना करवाने में असहाय हो रहा हो ॥ २० ॥

तदा सत्याग्रही जानन्, कार्पण्यान्मृत्युमुत्तमम् ।
प्राणान् निरर्थकान् बोधन्, कुर्यादनशनव्रतम् ॥ २१ ॥

तब वह सत्याग्रही कायरता से मृत्यु को उत्तम समझता हुआ, प्राणों को निरर्थक मानता हुआ अनशन व्रत का अनुष्ठान करे ॥ २१ ॥

वरं प्राणविसर्गः स्यान्न वरं दैन्यजीवनम् ।
अन्यायं सहमानो यो, जीवति न स जीवति ॥ २२ ॥

प्राणों का छोड़ देना कहीं अच्छा है, परन्तु दीनता का जीवन अच्छा नहीं । अन्याय को सहन करता हुआ जो जीता है, वह नहीं जीता ॥ २२ ॥

स्वं प्रति क्रियमाणं सोऽन्यायं सहेत वा न वा ।
समाजं क्रियमाणं तु, न सहेत नृशंसताम् ॥ २३ ॥

अपने प्रति किए गए अन्याय को वह (सत्याग्रही) सहन करले या न करे । परन्तु समाज के प्रति किए जाते हुए अन्याय एवं अत्याचार को वह कदापि सहन न करे ॥ २३ ॥

स नरः सत्वहीनः स्यान्मन्ये चापि नपुंसकः ।
स्वदेशं क्रियमाणं यः, परान्यायं तितिक्षते ॥ २४ ॥

मैं समझता हूं, वह मनुष्य सत्वहीन एवं नपुंसक है जो अपने देश के प्रति किए जाते हुए, दूसरे के अन्याय का सहन करता है ॥ २४ ॥

देशायमरणं पुंसः, श्रेयो वै जीवितादपि ।
अनुतिष्ठन्ननुष्ठेयं, म्रियमाणोऽपि जीवति ॥ २५ ॥

देश के लिए मर जाना, पुरुष के लिए, जीने से कहीं अच्छा है। कर्त्तव्य का अनुष्ठान करता हुआ व्यक्ति मरकर भी जीवित रहता है॥२५॥

उपवासं तु कुर्वाणो, व्रती न द्वेष्टि कस्यचित्।
अशुभं कुर्वतश्चापि, शुभं ध्याति विरोधिनः॥ २६॥

उपवास करता हुआ व्रती कभी किसी से द्वेष नहीं करता। बुराई करनें वाले का भी वह शुभ-चिन्तन करता है॥ २६॥

तूष्णीं तितिक्षमाणः स, बुभुक्षाऽसह्ययातनाः।
यती चिन्तयतेऽनन्त, सर्वाङ्गं विश्वमङ्गलम्॥ २७॥

भूख की असह्य यातनाओं को शान्तिपूर्वक सहन करता हुआ, वह संयमी सर्वाङ्गीण विश्व-मङ्गल का निरन्तर चिन्तन करता है॥ २७॥

उपवासश्च कालः स्यादीश्वरोपासनस्य हि।
लभेतोपवसंच्छक्तिमासीन. सविधे प्रभो.॥ २८॥

उपवास तो ईश्वरोपासना का समय होता है। प्रभु के समीप बैठा हुआ उपवासी उससे शक्ति को प्राप्त करता है॥ २८॥

दीनास्तु दुःखसन्तप्तास्तस्य स्युर्ध्यानभाजनम्।
उपोपितस्य चिन्तायाः, विशेषविपया हि ते॥ २९॥

दुःख से सन्तप्त दीन लोग उसके ध्यान के पात्र होते हैं। उपवासी की चिन्ता के तो वे विशेष विषय होते हैं॥ २९॥

सुखे वा यदि वा दु.खे, स्वप्ने जागरणेऽथवा।
विस्मरति व्रती नैव, ध्येयं दीनार्तिनाशनम्॥ ३०॥

सुख वा दुःख मे, स्वप्न वा जागरण मे, सत्याग्रही व्रती दीनार्तिनाशन अपने ध्येय को कभी भूलता नही है॥ ३०॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायामुपवासविज्ञानं नाम सप्तमो ऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में उपवास विज्ञान नाम सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय

राजेन्द्र उवाच

दीनार्तिनाशनं भूयो, वदसि ध्येयमुत्तमम् ।
अहिंसाव्रतिनो ब्रूषे, सुरत्वसम्पदं मुहुः ॥१॥

राजेन्द्र ने कहा

दीनार्तिनाशन को आप बार-बार उत्तम ध्येय कहते हैं। आप इसे फिर फिर अहिंसाव्रती की दैवी सम्पत्ति बतलाते हैं ॥१॥

नाहमेतन्महत्त्वं तु, सम्यग् बोधामि मोहन ।
तमेतं निजसिद्धान्त, विबोधयितुमर्हसि ॥२॥

हे मोहन ! मैं इसके महत्त्व को अच्छी तरह नही समझता। आप इस अपने सिद्धान्त को समझाने के योग्य हैं ॥२॥

श्री मोहन उवाच

अहिंसाव्रतिनः सत्य-व्रतिनो व्रतमुत्तमम ।
ध्येयं निष्ठां प्रतिष्ठाञ्च, मन्ये दीनार्तिनाशनम् ॥३॥

श्री मोहन ने कहा

मैं दीनार्तिनाशन को अहिंसाव्रती एवं सत्यव्रती का उत्तम व्रत, ध्येय, निष्ठा एवं प्रतिष्ठा मानता हूं ॥३॥

स एषोऽवितथः पन्थाः, सद्धर्मस्याप्तसम्मतः ।
एतेनाभ्युदयस्य स्यात्, सिद्धिः निश्रेयसस्य च ॥४॥

यह धर्म का आप्तसम्मत यथार्थ मार्ग है। इससे अभ्युदय (इह लोक की समृद्धि) एवं निःश्रेयस (परलोक का कल्याण) दोनो की सिद्धि होती है ॥४॥

निष्कर्षश्चैष सर्वासां, श्रुतीनां शोभनः स्मृतः ।
स्मृतीनाञ्चान्यशास्त्राणामेतत् संक्षिप्तशासनम् ॥५॥

यह सब वेदों का सुन्दर निष्कर्ष है। स्मृतियो एवं अन्य शास्त्रों का यह संक्षिप्त शासन है ॥५॥

कथितं धर्मसर्वस्वं, सर्वधर्मप्रवर्तकैः ।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥६॥

सब धर्मों के प्रवर्त्तकों ने धर्म का सर्वस्व इन शब्दो मे कहा है—"अपने से अनिष्ट व्यवहार को दूसरों के साथ न करे" ॥६॥

यथेप्सितं मनुष्याणां, भवेदात्मार्तिनाशनम् ।
तथैवावश्यको धर्मः, परेषामार्तिनाशनम् ॥७॥

जैसे मनुष्यो को अपने दुःख का नाश करना अभीष्ट है, इसी तरह दूसरों के दुःख का नाश करना भी अभीष्ट होना आवश्यक है ॥७॥

एतस्मादधिकं किंचिद्, धर्मं जानामि न त्वहम् ।
एष मे मोक्षमार्गोऽस्ति, देवपूजाविधिश्च मे ॥८॥

इससे बढ़कर मैं और कोई धर्म नहीं जानता। मेरे लिए यही मोक्ष का मार्ग है और यही ईश्वर-पूजा का तरीका है ॥८॥

आत्ममोक्षं नरोऽन्विष्येत, परेषां दुःखमोक्षणे ।
क्लेशपाशविपण्णेषु, प्रसीदन् मे न रोचते ॥९॥

मनुष्य दूसरो के दुःख-मोक्षण में अपने मोक्ष को ढूंढे। क्लेशों

के जाल में उलझे हुए लोगों में विलास करता हुआ व्यक्ति मुझे अच्छा नहीं लगता ॥९॥

केवलमात्मनो मुक्त्यै, यतमानो मुनिः पृथक्।
मन्ये स्वार्थाभिभूतः स, परमार्थविदेव न ॥१०॥

केवल अपनी मुक्ति के लिए पृथक् यत्न करता हुआ मुनि, मेरी समझ में, स्वार्थी व्यक्ति है, उसे परमार्थ का ज्ञान नहीं ॥१०॥

परार्थसाधनं जाने, परमार्थं तु तत्वतः।
परार्थपूरणे प्राण-विसर्गो मोक्ष उत्तमः ॥११॥

परार्थ का सम्पादन करना ही सच्चा परमार्थ है। परार्थ की पूर्ति में प्राणों का त्याग देना उत्तम मोक्ष है ॥११॥

यन्निर्वाणमिति ख्यातममिताभागमेष्वपि।
तत्क्लेशप्लुष्टविश्वस्य, सन्तापशमनात्मकम् ॥१२॥

बौद्ध धर्म के आगम-ग्रन्थों में जो निर्वाण नाम से विख्यात तत्त्व है, वह क्लेश से जलते हुए विश्व के सन्तापों को शान्त करने का नाम है ॥१२॥

न तादृग् योगिनो योग-निष्ठा फलवती भवेत्।
अहिंसायोगिनो यादृग्, विश्वकल्याणसाधना ॥१३॥

योगी की योगनिष्ठा भी उतनी फलवती नहीं होती, जितनी अहिंसा-योगी की विश्व-कल्याण-साधना ॥१३॥

न दरीदृश्यते देवो, दरीषु दुर्गमासु सः।
गिरीणां गह्वरेष्वेव, सरितां सङ्गमेषु वा ॥१४॥

भगवान् दुर्गम गुफाओं में, पर्वतों के गह्वर स्थानों में अथवा नदियों

के सङ्गमों में नहीं दर्शन देते ॥१४॥

भगवान् सर्वभूतानामन्तरात्मनि संस्थितः।
हृदयमन्दिरेष्वेव, प्रतिमास्य प्रतिष्ठिता ॥१५॥

वह भगवान् तो सब प्राणियों मे स्थित हैं। उसकी प्रतिमा हृदय-मन्दिरों में प्रतिष्ठित है ॥१५॥

एकः स सर्वभूतेषु, सूत्रात्मा सर्वतो गतः।
एकत्वं प्राणिनां तेन, सर्वथा संप्रसिध्यति ॥१६॥

वह एक सब प्राणियों के अन्तरात्मा मे सूत्रात्मा-रूप मे सब तरफ ओत-प्रोत है। इसीसे सब प्राणियों की एकता सर्वथा सिद्ध होती है ॥१६॥

प्राणिनामर्चनेन स्यान्निःसङ्गसेवया तथा।
सर्वभूताधिवासस्य, तस्यार्चनमनुत्तमम् ॥१७॥

प्राणियों की अर्चना से तथा निष्काम सेवा से, सर्वभूतवासी उस भगवान् का उत्तम अर्चन अथवा पूजन होता है ॥१७॥

दरिद्रा दुर्विधा दीनाः, निःस्वाश्च दुर्गतास्तथा।
अविद्याव्याधिसन्तप्ताः, सर्वे ईश्वरमूर्तयः ॥१८॥

दरिद्र, दुःखी, दीन, निर्धन, निस्सहाय व्यक्ति, अविद्या और रोगों से पीडित—सब भगवान् की मूर्तिया हैं ॥१८॥

तेषां दारिद्र्यनाशेनाऽविद्याऽपकरणेन च।
व्याधीनां शमनेनापि, परमात्मा प्रसीदति ॥१९॥

उनकी दरिद्रता नाश करने से, अविद्या मिटाने से और रोगो के शान्त करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥१९॥

यथा पिता स्वपुत्राणां, मोदं दृष्ट्वा प्रमोदते।
प्रीणाति भगवान् वीक्ष्य, प्राणिनः प्रीणितांस्तथा ॥२०॥

जैसे पिता अपने पुत्रो के आनन्द को देखकर आनन्दित होता है— इसी तरह भगवान् अपने प्राणियो को प्रसन्न देखकर प्रसन्न होता है ॥२०॥

एवं सत्यव्रती नित्यं, जीवानां मङ्गले रतः।
कर्मणा प्रीणयत्येव, तं सत्यपरमेश्वरम् ॥२१॥

इस तरह सत्यव्रती व्यक्ति नित्य प्राणियो के कल्याण में लगा हुआ, कर्म द्वारा, सत्यस्वरूप परमेश्वर को प्रसन्न करता है ॥२१॥

दीनार्तिनाशनं नाम, सोऽयं कर्मार्चनाविधिः।
अमुना कर्ममार्गेण, सिद्धिं विन्दति मानवः ॥२२॥

दीनार्तिनाशन नाम की यह कर्मार्चना की विधि है। इस कर्म-मार्ग द्वारा मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है ॥२२॥

अहिंसायोगयुक्तात्मा, मनोवचनकर्मणा।
कुर्वाणो लोककल्याणं, जातु नैवावसीदति ॥२३॥

अहिंसायोग में युक्त आत्मा वाला व्यक्ति मन, वचन तथा कर्म से लोक का कल्याण करता हुआ, कभी दुःखी नहीं होता ॥२३॥

किमथावितथं पथ्यं, कर्ममार्गमनुव्रजन्।
स आविष्कुरुतेऽत्यन्तमन्तःसन्तोषमात्मनः ॥२४॥

और इस सत्य हितकारक कर्म-मार्ग पर चलता हुआ व्रती अपने अन्तः सन्तोष को हृदय में आविष्कृत करता है ॥२४॥

अन्नं बुभुक्षितेभ्यस्तु, तृषितेभ्यश्च जीवनम्।
अवासोभ्यश्च वासांसि, वितरन् मोदतेतमाम् ॥२५॥

भूखों को अन्न, प्यासो को पानी, नंगो को कपड़ा बांटता हुआ वह (सत्यव्रती) अतिशय आनन्द को प्राप्त होता है ॥२५॥

विविधारुन्तुदव्याधि-पीडितात्मशरीरिणाम् ।
सपर्यामाचरन् योगी, परमां प्रीतिमृच्छति ॥२६॥

नाना प्रकार के मर्मभेदी व्यधियो से पीडित आत्मा और शरीर वाले, दुःखी लोगो की, सेवा करता हुआ योगी परम प्रसन्नता अनुभव करता है ॥२६॥

अज्ञानतिमिरे मग्नानन्यायभग्नचेतसः ।
दलितानुद्धरन् धीरः, शाश्वतं हर्षमाप्नुते ॥२७॥

अज्ञान अन्धकार में मग्न, अन्याय से टूटे दिल वाले, दलित व्यक्तियों का उद्धार करता हुआ, धैर्यवान्-व्रती निरन्तर हर्ष को उपलब्ध करता है ॥२७॥

आनन्दनामा परमेश्वरो यः, समाधिभिर्ब्रह्मविदामवाप्यः।
तमाप्नुते दीनदयाव्रतस्थो, दरिद्रनारायणनम्रभक्तः ॥२८॥

'आनन्द' नाम का जो परमेश्वर है, जो समाधियो द्वारा ब्रह्मवेत्ताओं को प्राप्त होने योग्य है—उसको दीन-दयाव्रत का अनुष्ठान करने वाला, दरिद्रनारायण भक्त प्राप्त कर लेता है ॥२८॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां दीनार्त्तिनाशनव्रतं नाम अष्टमोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में दीनार्तिनाशन-
व्रत नाम अष्टम अध्याय समाप्त ।

नवम अध्याय

राजेन्द्र उवाच

ईश्वरः स किमाकारो, निर्गुणः सगुणोऽपि वा।
किंरूपः किंप्रतीकश्च, कस्तस्योपासनाविधिः ॥१॥

राजेन्द्र ने कहा

वह ईश्वर किस प्रकार का है ? निर्गुण है या सगुण ? उसका स्वरूप क्या है ? उसके प्रतीक कौन से हैं ? उसकी उपासना की विधि कौन सी है ? ॥१॥

श्री मोहन उवाच

भगवानिन्द्रियातीतो, वाचामविषयो महान्।
महिमातिशयः कश्चिद्, विश्वमध्यास्य तिष्ठति ॥२॥

श्री मोहन ने कहा

भगवान् इन्द्रियातीत हैं। वाणी से परे हैं। महान् हैं। वह- कोई महिमा का पुञ्ज है—जो समस्त विश्व में अधिष्ठित है ॥२॥

चक्षुषां गोचरो नैवं, विप्रकृष्टश्च चेतसः।
तर्केणानवगम्यः सः, प्रमेयः श्रद्धया पुनः ॥३॥

वह आंख का विषय नहीं। चित्त से बहुत दूर है। तर्क द्वारा वह अगम्य है। केवल श्रद्धा से वह जानने योग्य है ॥३॥

ग्रामस्थो देशसम्राजं, नेदिष्ठं वेत्ति नो यदि।
न वेद्मि विश्वसम्राजं, लघिष्ठो नात्र विस्मयः ॥४॥

ग्राम में स्थित ग्रामीण यदि देश के समीपतम सम्राट् को नहीं जानता, तो यदि मैं क्षुद्र व्यक्ति विश्व के सम्राट् को नहीं जानता तो इसमें आश्चर्य नहीं ॥४॥

नापेक्षते प्रमाणानि, ब्रह्मानुभववेदितम्।
सर्वतोऽनुभवन्त्येव, तस्य भक्ता उपस्थितिम् ॥५॥

ईश्वर प्रमाणों की अपेक्षा नहीं करता। वह अनुभववेदनीय है। भक्त लोग उसकी उपस्थिति को सब तरफ अनुभव करते हैं ॥५॥

नाहं पश्यामि तद्रूपं, वेदनां वेद्मि काञ्चन।
अतीन्द्रियं सदप्येतत्, प्रत्यक्षं हृदयस्य तु ॥६॥

मैं उसके रूप को नही देखता। केवल किसी संवेदना को अनुभव करता हूँ। वह भगवान् इन्द्रियातीत होते हुए भी हृदय के लिए प्रत्यक्ष है ॥६॥

वहिरङ्गप्रमाणानि, नालमीश्वरसिद्धये।
भक्तानां सच्चरित्राणि, स्वयं व्याख्यापयन्ति तम् ॥७॥

ईश्वर की सिद्धि के लिए वाह्य प्रमाण पर्याप्त नहीं हो सकते। भक्तों के सच्चरित्र ही स्वयं उसकी व्याख्या करते हैं ॥७॥

ऋषयो मुनयः सिद्धाः, योगिनो यतयस्तथा।
निजानुभवगम्यं तं, विदन्ति परमेश्वरम् ॥८॥

ऋषि, मुनि, सिद्ध, योगी और यती लोग उस परमेश्वर को अपने अनुभव से वेदनीय जानते हैं ॥८॥

वीक्षे संसारधर्मोऽयं विनाशः परिवर्तनम् ।
परमेकं न पश्यामि, विनष्टं परिवर्तितम् ॥९॥

मैं संसार का यह धर्म देखता हूँ—जो विनाश और परिवर्तन है ।
परन्तु एक को मैं न विनष्ट होता हुआ और न परिवर्तित होता हुआ देखता हूँ ॥९॥

य एको विश्वरूपं सर्वं, सृजति संहरत्यपि ।
पुनश्च संसृजत्येव, परमात्मा स मे मतः ॥१०॥

जो अकेला समस्त संसार को बनाता है और संहार करता है, और फिर सर्जन करता है--वही मुझे परमात्मा स्वीकार है ॥१०॥

ईश्वरः स निराकारोऽनादिरनन्त एव च ।
सदा सन्नथ विश्वात्मा, जगदाधारकारणम् ॥११॥

ईश्वर वह निराकार, अनादि और अनन्त है । सदा सत् है । विश्व की आत्मा है । जगत् का आधार भूत कारण है ॥११॥

चिद्रूपः सत्यरूपश्चास्तित्वं तस्य सनातनम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन् सः, सत्यशब्देन बोधितः ॥१२॥

वह चेतन स्वरूप है । उसका अस्तित्व सनातन है । नाशवान् पदार्थों में वह अविनश्वर तत्त्व है । उसे 'सत्य' नाम से जाना जाता है ॥१२॥

भगवानेव तत्सत्यं, सत्यं हि भगवान् ध्रुवम् ।
तौ सत्यभगवन्तौ हि, मन्ये पर्यायवाचकौ ॥१३॥

भगवान् ही वह सत्य है और सत्य ही भगवान् है । वे दोनो सत्य और भगवान्—पर्यायवाची शब्द हैं ॥१३॥

ईश्वरो निर्गुणो ह्येष, नित्यशुद्धो निरञ्जनः।
अल्पबुद्धिर्नृणां तस्मिन्नध्यारोपयते गुणान् ॥१४॥

यह ईश्वर निर्गुण, नित्य शुद्ध और निर्लेप है। मनुष्यों की अल्प-बुद्धि उसमें गुणों का अध्यारोप करती है ॥१४॥

अव्यक्तः स्यादविज्ञेयो, व्यक्तः स्याद् वेद्य एव सः।
अतो व्यक्तगुणांस्तस्मिन्, कल्पन्ते दुर्बला नराः ॥१५॥

वह अव्यक्त है, अविज्ञेय है। व्यक्त होने पर ही वह विज्ञेय होता है। अतएव दुर्बल-बुद्धि पुरुष उसमें व्यक्त के गुणों की कल्पना करते हैं ॥१५॥

अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नो, भगवान् भक्तवत्सलः।
वृणुते भावनां भव्यां, भक्तानां श्रद्धयान्विताम् ॥१६॥

अव्यक्त भगवान् व्यक्त होकर, भक्तों से प्रेम करते हुए, उनकी श्रद्धा से भरी हुई सुन्दर भक्ति को स्वीकार करते हैं ॥१६॥

उच्चावच्चविचाराणां, नराणां बुद्धिभेदतः।
एकमेव तु तद् ब्रह्म, ज्ञायतेऽनेकनामभिः ॥१७॥

मनुष्यों की बुद्धि के कम अधिक विकास के अनुसार, एक ही ब्रह्म अनेक नामों से जाना जाता है ॥१७॥

'अल्लाहः' स हि एवास्ति, योऽसौ तु परमेश्वरः।
'गौड' विख्यातनामापि, न कश्चिदपरः पुनः ॥१८॥

वही 'अल्लाह' है, जिसे परमेश्वर कहा जाता है। 'गौड' नाम से विख्यात भी कोई और नहीं है ॥१८॥

तत्सन्देशहरान्मन्ये, सर्वधर्मप्रवर्तकान्।
नित्यसत्यप्रवक्तारस्ते नानानामभिर्नतु ॥१६॥

सब धर्मों के प्रवर्तको को मैं उस भगवान् का सन्देशहर मानता हूँ वे भिन्न २ नामो से नित्य शाश्वत सत्य का प्रवचन करने वाले हैं ॥१६॥

वेदोपनिषदादींश्च, स्वधर्मनिगमान् यथा।
जानामीश्वरसन्दिष्टानन्यधर्मागमांस्तथा ॥२०॥

मैं वेद उपनिषद् आदि अपनी धर्म पुस्तकों को, जैसे ईश्वर से सन्देश रूप मे प्राप्त हुई मानता हूँ, वैसे ही अन्य धर्मों की पुस्तको को भी समझता हूँ ॥२०॥

भगवानेव व्यनक्ति स्वं, रूपं नीरूपसुन्दरम्।
स नानानामभी रूपैर्देशे देशे युगे युगे ॥२१॥

भगवान् ही अनेक नामो और रूपों से देश-देश में तथा युग २ में अपने रूपहीन-सुन्दर स्वरूप को प्रकट करते हैं ।२१॥

विश्वमेतत्समस्तं तु, स्थावरं जङ्गमं तथा।
विवृणोति विराड्रूपं, तस्यैव ब्रह्मणो बृहत् ॥२२॥

यह समस्त स्थावर तथा जङ्गम जगत् उसी ब्रह्म के वृहत् विराट् स्वरूप को अभिव्यक्त करता है ॥२२॥

न केवलं नरा एव, कृमयो विहगा मृगाः ।
अपि तस्यैव रूपाणि, न व्रती तान् जिघांसति ॥२३॥

न केवल मनुष्य, कृमि, पक्षी और पशु भी उसी ब्रह्म के रूप हैं। व्रती व्यक्ति उनकी हिसा करने की इच्छा नहीं करता ॥२३॥

येन केन प्रकारेण, यस्य कस्यापि जन्तुनः।
सन्तोषं जनयेद् धीमान्, तदेवेश्वरपूजनम् ॥२४॥"

जिस किसी प्रकार से, जिस किसी प्राणी का, बुद्धिमान् पुरुष सन्तोष उत्पन्न करे, यही ईश्वरपूजन है" ॥२४॥

इति भागवतो धर्मः, सर्वत्र सर्वसम्मतः ।
नातः परतरं श्रेयो, धर्मं पश्यामि कञ्चन ॥२५॥

यह भगवान्-धर्म सब जगह सर्वसम्मत है। मैं इस से बढ़ कर अच्छा धर्म कोई नहीं देखता ॥२५॥

ईश्वरोपासनायाश्च, विधिः स उत्तमः स्मृतः ।
दीनानुपासमाना वै, परमेशमुपासते ॥२६॥

ईश्वरोपासना की वह सब से उत्तम विधि कही जाती है। दीनो का उपासना करता हुआ, मनुष्य परमेश्वर की उपासना करता है ॥२६॥

न तथा प्रीयते देवो, यज्ञपूजाजपव्रतैः ।
शुश्रूषया स्वपुत्राणां, दुःखितानां यथा तु स. ॥२७॥

भगवान् यज्ञ, पूजा, जप एवं व्रतो से इस तरह प्रसन्न नहीं होते, जिस तरह वे अपने दुःखी पुत्रो की सेवा से प्रसन्न होते हैं ॥२७॥

मनुष्यः प्रतिमा तस्य, प्रत्यक्षपरमात्मनः ।
भजन्नेतं विनीतात्मा, भगवन्तं प्रतीक्षते ॥२८॥

मनुष्य उस परमात्मा की प्रत्यक्ष मूर्ति है। विनीत भाव से उस की भक्ति करता हुआ व्यक्ति भगवान् की भक्ति करता है ॥२८॥

अन्ये चापि प्रतीका ये, परमेश्वरसंज्ञकाः ।
मूर्तयो भक्तिसंसिक्ताः, भक्तानां ताः सुखावहाः ॥२९॥

अन्य भी परमेश्वर का सङ्केत करने वाले जितने प्रतीक हैं, वे भी—

मूर्ति आदि—भक्ति से सिञ्चे जाने पर, भक्तों को सुख देने वाली होती हैं ॥२९॥

आस्थावान् श्रद्धधानो यस्तस्यैते सृष्टिसंस्थिताः।
पदार्थाः प्रकृतेः प्रीताः, प्रतीकाः परमात्मनः ॥३०॥

जो व्यक्ति आस्था एवं श्रद्धा से परिपूर्ण है, उसके लिये ये सब सृष्टि में खड़े हुए, प्रकृति के सुन्दर पदार्थ परमात्मा के प्रतीक (चिह्न) रूप हैं ॥३०॥

कमप्येकं समाधाय, प्रकृतेः सुभगं गुणम्।
सत्यव्रती समाप्नोति, जीवनध्येयमुत्तमम् ॥३१॥

प्रकृति के किसी भी एक सुन्दर गुण में चित्तवृत्ति को एकत्रित करके सत्यव्रती जीवन के ध्येय को प्राप्त कर लेता है ॥३१॥

परमात्मा प्रकाशोऽस्ति, करुणासारसुन्दरः।
तमिस्रातमसापूर्णमन्धकारमयं जगत् ॥३२॥

परमात्मा प्रकाश स्वरूप हैं। करुणामय हैं। यह जगत् रात्रि के घोर अन्धकार से परिपूर्ण है ॥३२॥

अध्वगो दूरतश्चास्ति, स्वध्येयान्निजसद्मनः।
स याचेत प्रकाशाय, भगवन्तं प्रतिक्षणम् ॥३३॥

पथिक अपने ध्येय से-अपने घर से-बहुत दूर है। वह भगवान् से प्रकाश के लिए प्रतिक्षण प्रार्थना करे ॥३३॥

न दूरं द्रष्टुमिच्छामि, पदमेकमलं मम।
भगवन् प्रार्थये शश्वदवलम्बस्व मे पदम् ॥३४॥

मैं दूर नहीं देखना चाहता। मेरे लिए एक कदम भी बहुत है। हे भगवन्! मै प्रार्थना करता हूँ—आप मेरे एक कदम को निरतंर सहारा दें ॥३४॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायामीश्वरनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में ईश्वरनिरूपण नाम नवम अध्याय समाप्त

दसवां अध्याय

श्रीमोहन उवाच

आर्तयस्त्रिविधाः प्रोक्ता, याः पचन्ति त्रिविष्टपम् ।
तन्नाशं चिन्तयन्नास्ते, दीनार्तिनाशनव्रती ॥१॥

श्री मोहन ने कहा

तीन प्रकार की पीडाएं कही गई हैं, जो संसार को पका रही हैं। दीनार्तिनाशन के व्रत का पालन करने वाला, उनके नाश की चिन्ता करता हुआ रहता है ॥१॥

तत्राद्याध्यात्मिकी पीड़ा, ख्याताऽविद्येति नामतः ।
न जानन्त्यात्मनो दुःखं, प्राणिनो मोहिता यया ॥२॥

उनमे पहली आध्यात्मिक पीडा है, जो अविद्या नाम से कही गई है। इससे मोहित हुए मनुष्य अपने दुःख को नही जानते ॥२॥

द्वितीया तु पुनः पीड़ा, रोगसन्तापसंज्ञिता ।
दैवप्रकोपजाता हि, विज्ञाता साऽधिदैविकी ॥३॥

दूसरी पीडा रोग सन्ताप के नाम से है। यह दैवी तत्त्वो के प्रकोप से उत्पन्न होती है। यह आधिदैविकी पीड़ा कही जाती है ॥३॥

अन्त्या दरिद्रता नाम, महाक्लेशमयी भृशम् ।
पीडाऽधिभौतिकी सेयं, भूतानि व्याप्य तिष्ठति ॥४॥

अन्तिम दरिद्रता नाम से है—जो सदा महान् क्लेश को देने वाली है। यह आधिभौतिक पीड़ा कही जाती है और प्राणियो को व्याप्त करके ठहरी हुई है ॥४॥

राजेन्द्र उवाच

अविद्यां प्रथमं दुःखं, वदस्यात्मविमोहनम् ।
कथं प्रतिकृतिस्तस्य, भवेन्मोहन सम्भवा ॥५॥

राजेन्द्र ने कहा

जो पहला, आत्मा को मोहित करने वाला दुःख, अविद्या नाम से आप बतलाते हैं, उसका प्रतिकार, हे मोहन ! कैसे सम्भव हो सकता है ? ॥५॥

विद्या चेत् प्रतिकारस्ते, सा तु किंलक्षणा पुनः ।
ध्येयं किं कः प्रकारश्च, तच्छिक्षायाश्च को विधिः ॥६॥

यदि विद्या, आप उसका प्रतिकार कहते हैं तो उसका लक्ष्य क्या है ? ध्येय क्या है, प्रकार क्या है ? उसकी शिक्षा की विधि क्या है ? ॥६॥

श्रीमोहन उवाच

सत्यं राजेन्द्र ! विद्यैवाविद्यासन्तापनाशिनी ।
शास्त्रोक्तं लक्षणं तस्याः, साविद्या या विमुक्तये ॥७॥

श्री मोहन ने कहा

हे राजेन्द्र ! विद्या ही अविद्या के सन्ताप को दूर करने वाली है । उसका शास्त्रोक्त लक्षण तो है—"विद्या वह है, जो मुक्ति के लिए है" ॥७॥

चित्तं पुनाति या नित्यं, शिक्षयत्यात्मसंयमम् ।
निर्भयत्वञ्च पुष्णाति, सृजति स्वावलम्बनम् ॥८॥

जो चित्त को नित्य पवित्र करती है, जो आत्मसंयम को सिखाती है, निर्भयता को संपुष्ट करती है और स्वावलम्बन को उत्पन्न करती है ॥८॥

अथोपजीविकायाश्च, साधनं धर्मसम्मतम् ।
मोचयत्यपि या दास्यात्, स्वायत्तं कुरुते तथा ॥९॥

और जीविका का भी धर्मानुकूल साधन बनती है, जो दासता से छुडाती है और मनुष्य को स्वायत्त बनाती है ॥९॥

हृदयं हृद्यसन्दीप्त्या, या विद्योतयते सदा ।
सा विद्या त्वपराऽविद्या, विपरीतार्थदर्शिनी ॥१०॥

जो हृदय को सुन्दर ज्योति से प्रदीप्त करती है, वही विद्या है। दूसरी तो अविद्या है, जो विपरीत अर्थ का दर्शन कराने वाली है ॥१०॥

ध्येयमक्षरविज्ञानं, भगवानक्षरः स्मृतः ।
अभ्यस्यन्नक्षरं ब्रह्म, विद्ययामृतमश्नुते ॥११॥

अक्षर का ज्ञान प्राप्त करना ध्येय है। भगवान् अक्षर कहे जाते हैं। अक्षर ब्रह्म का अभ्यास करते हुए, मनुष्य विद्या द्वारा अमृतत्त्व को प्राप्त करता है ॥११॥

अविद्याऽध्यात्मिकं दुःखं, विद्या चाध्यात्मिकं सुखम् ।
विद्वान् विद्यानवद्यात्मा, चेतनानन्दमृच्छति ॥१२॥

अविद्या आध्यात्मिक दुःख है, विद्या से विशुद्ध आत्मा वाला विद्वान् चेतन आनन्द को प्राप्त होता है ॥१२॥

शिक्षा तस्याः प्रकारोऽस्ति, विद्यासङ्क्रमणात्मकः ।
शिक्षयैव गुरुः स्वेभ्यो, विद्यातत्वानि दित्सति ॥१३॥

शिक्षा उसका प्रकार है, जो विद्या को सङ्क्रान्त करने वाला है। शिक्षा द्वारा ही गुरु अपने शिष्यों को विद्या के तत्व देता है ॥१३॥

शिक्षाऽत्र श्रेयसी सैव, नरास्तु दीक्षिताः यया ।
शरीरचिन्तया मुक्ताः शक्ष्यन्ति ध्येयसाधने ॥१४॥

शिक्षा तो वह कल्याणकारिणी है, जिसमें मनुष्य दीक्षित हुए २ शरीर की चिन्ता से मुक्त होकर, अपने ध्येय की सिद्धि मे समर्थ होते हैं ॥१४॥

अथ शिक्षाविधिं वक्ष्ये, राष्ट्रकल्याणकारिणीम् ।
देशस्याभ्युदयो येन, भारतस्य भवेन्मम ॥१५॥

अब मै शिक्षा की विधि को बतलाता हूँ—जो राष्ट्र के लिए कल्याण-कारिणी हो सकती है और जिससे मेरे भारत देश का अभ्युदय हो सकता है ॥१५॥

सोऽयं दरिद्रतापूर्णो, जीविकायै पराश्रितः ।
दासताशृङ्खलाबद्धोऽविद्यान्धतमसे स्थितः ॥१६॥

यह मेरा देश दरिद्रता से पूर्ण है, जीविका के लिए दूसरो पर आश्रित है, दासता की शृङ्खलाओं में बंधा हुआ है और अविद्या के अन्धतमस मे लीन है ॥१६॥

प्रतिशतं वसन्त्यत्र, पञ्चाशीतिजना ननु ।
ग्रामेषु विप्रकृष्टेषु, कृषिमात्रोपजीविषु ॥१७॥

सौ में पचास आदमी यहाँ दूर २ गांवो में रहते हैं और कृषिमात्र पर आश्रित हैं ॥१७॥

अतः शिक्षां तु तामेव, मन्येऽहं शोभनां शुभाम् ।
यया शक्ष्यन्ति मानेन, जीवितुं ग्रामवासिनः ॥१८॥

इसलिए, उसी शिक्षा को मैं सुन्दर तथा शुभ समझता हूँ—जिससे ग्रामवासी लोग सम्मानपूर्वक जी सकें ॥१८॥

देशे कृपिप्रधानेऽस्मिन्, कृषिशिक्षोत्तमा मता।
उटजव्यवसायानां, शिक्षणञ्चोचितं स्मृतम् ॥१६॥

इस कृषिप्रधान देश में कृषि की शिक्षा देना उत्तम है और गृह-व्यवसायो का सिखाना भी यहा उचित है ॥१६॥

राष्ट्रप्रारम्भिकीशिक्षा, गृहोद्योगावलम्बिता।
विधास्यति स्वदेशीयान्, स्वाधीनान् स्वावलम्बितान् ॥२०॥

राष्ट्र की प्रारम्भिक शिक्षा गृह-व्यवसायो पर ही निश्चित होनी चाहिए। वही अपने देशवासियो को स्वाधीन बनाएगी ॥२०॥

वर्णज्ञानसमं बालाः, क्रीडया मोदसंयुताः।
क्षुद्रकव्यवसायांश्च, शिक्षेरन् सुगमानपि ॥२१॥

बच्चे अक्षर-ज्ञान के साथ २ ही खेल २ मे आनन्द से छोटे २ सुगम व्यवसायो को सीख सकते हैं ॥२१॥

प्राक् चाक्षरविज्ञानात्, शरीरशौचशिक्षणम्।
वसनव्यूतिदण्डस्य, शिक्षणञ्चोचितं मतम् ॥२२॥

अक्षरज्ञान से पहले शरीरशुद्धि का सिखाना आवश्यक है। और साथ ही तकली का अभ्यास कराना भी उचित है ॥२२॥

एवं च रोचकाख्यानैरितिहासस्य पाठनम्।
भूगोलगणितादीनां, प्रत्यक्षदर्शनैः वरम् ॥२३॥

इसी तरह रोचक उपाख्यानो द्वारा इतिहास का पढ़ाना, तथा भूगोल गणित का प्रत्यक्षदर्शन द्वारा अभ्यास कराना उत्तम है ॥२३॥

सङ्गीतैः धर्मशिक्षायाश्चरित्रैः धर्मपुस्तकैः।
ज्ञानमावश्यकं मन्ये, शिक्षा धर्मं विना विषम् ॥२४॥

सङ्गीत द्वारा तथा धर्मपुस्तकों द्वारा एवं चरित्रचित्रण द्वारा धर्मशिक्षा का ज्ञान कराना भी आवश्यक है। शिक्षा धर्म के बिना विष के समान है ॥२४॥

या न शिक्षयते शुद्धिं, चेतसः संयमं न च।
गुरुषु परमां भक्तिं, न च श्रद्धां तपोबले ॥२५॥

जो न शुद्धि को सिखाती है, न चित्त के संयम को, न गुरुओं में भक्ति को, न तपोबल में श्रद्धा को ॥२५॥

या चैव कुरुते छात्रान्, परमात्मपराङ्मुखान्।
स्वदेशसभ्यताशत्रून्, स्वधर्मसंस्कृतिद्विषः ॥२६॥

जो विद्यार्थियों को परमात्मा से विमुख बनाती है, अपनी देश की सभ्यता का शत्रु बनाती है, तथा अपने धर्म एवं संस्कृति से द्वेष सिखाती है-॥२६॥

धनस्य मृगतृष्णां तु, स्वार्थबुद्धिं च कुत्सिताम्।
शिक्षयतीह या शिक्षा, राजेन्द्र ! सा न मे प्रिया ॥२७॥

जो धन की अनन्त तृष्णा को पैदा करती है और कुत्सित स्वार्थ बुद्धि को उत्पन्न करती है—हे राजेन्द्र ! वह शिक्षा मुझे प्रिय नहीं ॥२७॥

स्त्रीशिक्षां च तथैवाहं, मन्य आवश्यकीं पुनः।
नारीणामधिकारोऽस्ति, शिक्षाया वै यथा नृणाम् ॥२८॥

इसी तरह, स्त्रीशिक्षा को मैं आवश्यक मानता हूं। स्त्रियों का वैसा ही शिक्षा में अधिकार है—जैसा मनुष्यों का है ॥२८॥

सा तु स्याद् धार्मिकी शिक्षा, गृहोद्योगसमाश्रिता।
गृहिणीपदयोग्या च, मातृत्वार्हा विशेषतः ॥२९॥

वह स्त्रीशिक्षा धार्मिक होनी चाहिए तथा गृहव्यवसायों पर

आश्रित होनी चाहिए। उसके द्वारा गृहिणी के कर्त्तव्यो का बोध कराना आवश्यक है और विशेषतया मातृत्व का ज्ञान देना आवश्यक है ॥२६॥

वालानां बालिकानां च, धर्मसंयतचेतसाम्।
षोडशवर्षपर्यन्त, न दोषः सहशिक्षणे ॥३०॥

बालक और बालिकाओं का—धर्म द्वारा संयत चित्त के साथ, सोलह वर्ष की आयु तक, परस्पर सहशिक्षण मे, कोई दोष नही ॥३०॥

ग्रामेषु प्रौढ़शिक्षापि, सर्वथा सम्मता मम।
परमक्षरविज्ञानं, मन्ये नावश्यकं पुनः ॥३१॥

ग्रामो में प्रौढ़-शिक्षा देना भी मुझे सर्वथा सम्मत है। परन्तु मैं अक्षरज्ञान को परम आवश्यक नहीं समझता ॥३१॥

निरक्षरा मनुष्यास्तु, स्त्रियोऽपि पाठनं विना।
स्तोकज्ञानविदःकर्त्तुं, शक्यन्ते भाषणादिभिः ॥३२॥

निरक्षर मनुष्य तथा स्त्रियां पढ़ाने के बिना भी, भाषण के प्रकार से कुछ २ शिक्षित किये जा सकते हैं ॥३२॥

मूलस्रोतस्तु विद्यायाः, न ग्रन्थेष्वेव विद्यते।
निगमागमवेदास्तु, श्रुतयः श्रवणागताः ॥३३॥

विद्या का मूल स्रोत ग्रन्थो मे ही नहीं होता। निगम-आगम-वेद आदि शास्त्र श्रवण परम्परा से ही हमारे तक पहुँचे हैं ॥३३॥

राष्ट्रशिक्षासमस्या या, भारते विषमा स्थिता।
न शक्या सा समीकर्तुं, श्रुतिशिक्षाक्रमं विना ॥३४॥

राष्ट्रशिक्षा की समस्या जो भारत वर्ष में बड़ी टेढ़ी प्रतीत होती है—वह श्रवण-शिक्षा-क्रम के बिना सुलझाई नहीं जा सकती ॥३४॥

एकभाषाप्रसारोऽपि, परमावश्यको मतः ।
भाषैकत्वादृते नैव, राष्ट्रैकत्वं तु सम्भवम् ॥३५॥

एक भाषा का प्रसार परम आवश्यक माना गया है। बिना भाषा की एकता के राष्ट्र की एकता सम्भव नहीं ॥३५॥

भाषणैः राष्ट्रभाषेयं, लेखनैश्चापि सर्वथा ।
हिन्दुस्तानीति विज्ञाता, शिक्षयितुं सदोचिता ॥३६॥

यह 'हिन्दुस्तानी' नाम से ज्ञात राष्ट्रभाषा भाषण तथा लेखन द्वारा सिखाई जानी उचित है। ॥३६॥

प्रान्तेषु प्रान्तभाषाणां, समावेशस्तु साम्प्रतः ।
मातृभाषामधीयानाः, बालाः स्युः सुगमागमाः ॥३७॥

प्रान्तों में प्रान्तीय भाषाओं का समावेश उचित है। मातृभाषा को पढ़ने वाले बालक सुगमता से विद्या ग्रहण कर सकते है ॥३७॥

किञ्चाथ मूलभाषाणामुच्चकक्षासु शोभनम् ।
धर्माय संस्कृतादीनां, वरमध्यापनं भवेत् ॥३८॥

और उच्च कक्षाओं मे मूलभाषा संस्कृत आदि का शिक्षण, धर्म के लिये आवश्यक है ॥३८॥

अपि विदेशभाषाणां, कासाञ्चिद् ज्ञानमुत्तमम् ।
अन्तर्जातीयविद्यानां, ग्रहणं तेन सम्भवम् ॥३९॥

कुछ विदेशी भाषाओं का ज्ञान कराना भी उत्तम है। उनसे अन्तर्जातीय विद्याओं का ग्रहण सम्भव हो सकता है ॥३९॥

अहिंसा भारतस्यास्य, प्राचीनः संस्कृतेर्गुणः ।
नातो हिंसामयी शिक्षा, देशेऽस्मिन्नुचिता भवेत् ॥४०॥

अहिंसा इस भारत की संस्कृति का प्राचीन गुण है। इसलिए इस देश मे हिंसा का समर्थन करने वाली शिक्षा उचित नहीं हो सकती ॥४०

एष संक्षेपतः प्रोक्त, शिक्षाया विषयो महान्।
अविद्यादुःखनिर्मुक्तं, दिदृक्षेऽहं स्वभारतम् ॥४१॥

यह मैंने शिक्षा का महान् विषय संक्षेप से कह दिया। मैं अपने भारत को अविद्या के दुःख से मुक्त हुआ २ देखना चाहता हूँ ॥४१॥

कामये शिक्षिताः सन्तो, बालाः प्रौढास्तथा स्त्रिय.।
शरीरचिन्तया मुक्ताः, जीवनध्येयमाप्नुयुः ॥ २॥

मैं कामना करता हूं कि इस देश के बालक, प्रौढ़ तथा स्त्रियां शिक्षित होकर, शरीर की चिन्ता से मुक्त हुए २, जीवन के ध्येय को प्राप्त करें ॥४२॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायामविद्यार्तिनाशनं
नाम दशमोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग मे अविद्यार्तिनाशन नाम
दशम अध्याय समाप्त

एकादश अध्याय

श्रीसम्मोहन उवाच

अथ वक्ष्यामि रोगाणां, विश्वसन्तापकारिणाम् ।
आधिदैविकदुःखानां, प्रतिकारं यथाक्रमम् ॥१॥

श्री मोहन ने कहा

अब मैं संसार को सन्तप्त करने वाले रोगो का, जो आधिदैविक दुःख हैं—यथाक्रम प्रतिकार बतलाता हूं ॥१॥

नीरोगाः स्वास्थ्यसम्पन्नाः, सुस्मयोल्लसिताननाः ।
युवतयो युवानश्च, देशसम्पत्तयः स्मृताः ॥२॥

नीरोग, स्वास्थ्य से युक्त, आनन्द से उल्लसित मुख वाले युवक और युवतियां देश की सम्पत्ति कही जाती हैं ॥२॥

भारतं मम भूयिष्ठ-व्याधीनां धाम दुःखितम् ।
किञ्चासदुपचारार्तं, तच्चिचकित्सामि किञ्चन ॥३॥

मेरा भारत बहुत बीमारियो का घर है और दुःखी है । वह दोष-युक्त उपचारो से पीडित है । उसी की कुछ मैं चिकित्सा करना चाहता हूं ॥३॥

नाहं चिकित्सकः कश्चिन्न वाऽयुर्वेदकोविदः ।
किमप्यात्मानुभूतं वै, विवक्षामि हितेच्छया ॥४॥

न मैं कोई चिकित्सक हूं—न कोई आयुर्वेदविशारद हूं । मै अपने से अनुभूत उपचारो को, हित की भावना से, कहना चाहता हूं ॥४॥

चिकित्सा प्रथमा रोग-निदानानां निवारणम् ।
निवृत्तौ रोगहेतूनां, न स्याद् रोगस्य सम्भवः ॥५॥

पहली चिकित्सा रोग के निदानों का निवारण है। रोग के हेतुओं के निवृत्त होने पर, रोग की सम्भावना नहीं होती ॥५॥

व्याधीनामोषधिभ्यस्तु, शमो न स्वास्थ्यमुच्यते ।
रोगाणामजनिः स्वास्थ्यमारोग्यञ्च प्रकीर्तितम् ॥६॥

औषधियों द्वारा रोगों की शान्ति का नाम स्वास्थ्य नहीं है। रोगों का न उत्पन्न होना ही नीरोगता व स्वास्थ्य है ॥६॥

भेषजैः रोगनाशाद्धि, भृशं नीरोगता वरम् ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य, दूरादस्पर्शनं वरम् ॥७॥

दवाइयों से रोग नाश होने की अपेक्षा रोगों का न होना कहीं अच्छा है। कीचड़ को धोने से, उसे सर्वथा न छूना ही कहीं उत्तम है ॥७॥

युक्ताहारविहारेण, ब्रह्मचर्यस्य निष्ठया ।
व्यायामैः स्वच्छताप्रेम्णा, नर आरोग्यमृच्छति ॥८॥

नियमित आहार तथा विहार से, ब्रह्मचर्य के पालन से, व्यायाम से, स्वच्छता के प्रेम से, मनुष्य नीरोगता को प्राप्त करता है ॥८॥

तत्रादौ स्वच्छता प्रोक्ता, त्रिविधा दोषनाशिनी ।
शारीरिकी तथा बाह्या, व्यवहारस्य स्वच्छता ॥९॥

वहां सब से प्रथम दोषों का नाश करने वाली स्वच्छता तीन प्रकार की कही जाती है—शारीरिक, बाह्य तथा आचार सम्बन्धी ॥९॥

शरीरशुद्धिरत्रोक्ता, परमावश्यकी पुनः ।
प्रतिदिनाभिषेकेण, वपुषः शोधनं वरम् ॥१०॥

यहां शरीर की शुद्धि परम आवश्यक कही गई है । प्रतिदिन स्नान करने से शरीर का शुद्ध करना उत्तम माना जाता है ॥१०॥

आपस्तु परमाः पूता, स्नानीयाः समुदाहृताः ।
गात्राणां मार्जनं ताभिरारोग्यप्रदमुच्यते ॥११॥

पानी तो परम पवित्र स्नान के योग्य कहे गए हैं । उनसे अङ्गो का धोना स्वास्थ्य-प्रद कहा गया है ॥११॥

नेत्रश्रवणनासानां, दन्तानाञ्च विशेषतः ।
कक्षोरुसन्धिदेशानां, मलप्रस्राविणां मुहुः ॥१२॥
शरीरावयवानां हि, सर्वेषां विधिपूर्वकम् ।
मलप्रक्षालनं मन्ये, स्वास्थ्यारोग्यविवर्धनम् ॥१३॥

आख, कान, नाक, विशेषतया दान्त, पार्श्व, जंघाओं के जोड़ स्थान, जो मल बहाते रहते हैं, तथा अन्य सब शरीर के अवयवों का विधिपूर्वक मल का धोना स्वास्थ्य तथा आरोग्य को देने वाला है ॥१२॥-॥१३॥

वस्त्राणां स्वच्छता चापि, शरीरस्वच्छता स्मृता ।
दारिद्र्यं कारणं न स्यान्मालिन्यस्य तु वाससाम् ॥१४॥

वस्त्रों की स्वच्छता भी शरीर की स्वच्छता कही जाती है । वस्त्रों की मलिनता का कारण दरिद्रता को नहीं कहा जा सकता ॥१४॥

स्वभावेन प्रमादेन, मलिनवसना नराः ।
बोधन्ति न मलं धाम, व्याधीनामुपतापिनाम् ॥१५॥

मनुष्य स्वभाववश अथवा प्रमादवश मलिन वस्त्र धारण करते हैं । वे नहीं जानते कि मलिनता सन्तापकारिणी सब व्याधियों का घर है ॥१५॥

स्वच्छानि जीर्णवस्त्राणि, निर्णिक्तानि पुनः पुनः ।
मन्ये साधुतराण्येभ्यास्वच्छकौशेयवासस. ॥१६॥

स्वच्छ, यद्यपि पुराने वस्त्र भी, बार २ धोये हुए, मै समझता हूँ मलिन रेशमी वस्त्रो से भी अधिक अच्छे हैं ॥१६॥

शुभ्रत्वं नापि वस्त्राणां, केवल स्वच्छता मता ।
न परिश्रमिणः शक्ताः शुक्लवासांसि रक्षितुम् ॥१७॥

वस्त्रो की शुभ्रता भी केवल स्वच्छता नही कही जाती । मजदूर लोग अपने कपडो को सफेद नहीं रख सकते ॥१७॥

जलप्रक्षालनैरेव, किं वा क्षारप्रयोगतः ।
मलापनयनं तेषां, वसनानामभीप्सितम् ॥१८॥

पानी से धोने से अथवा साबुन के प्रयोग से वस्त्रो की मलिनता को दूर करना ही अभीष्ट है ॥१८॥

अथ स्यात् स्वच्छता बाह्या, भूयः स्वास्थ्यप्रदायिनी ।
वापीकूपतडागानां, रथ्याविपणिवेश्मनाम् ॥१६॥

पुनः स्वास्थ्यप्रदायिनी बाह्य स्वच्छता वह है, जो बावली, कुआं, तालाब, गली, बाज़ार तथा घर मे रखी जाती है ॥१६॥

अथ ग्रामेषु दृश्यन्ते, पूतिगन्धिजलाशयाः ।
स्नान्त्यत्र पशुभिः सार्धं, पुरुषाः शिशवः स्त्रियः ॥२०॥

आजकल गावो मे दुर्गन्धि से भरे हुए तालाब दिखाई देते हैं, जिन मे पुरुष, स्त्रिया और बच्चे पशुओं के साथ स्नान करते हैं ॥२०॥

पिबन्त्यत्र च तद्वारि, ग्रामीणास्तत्पचन्त्यपि ।
स एषोऽस्ति महान् दोषो, देशस्वास्थ्यविघातकः ॥२१॥

ग्रामीण लोग वहां पानी पीते हैं और उसी से भोजन पकाते हैं। यह उनका बहुत बड़ा दोष है, जो देश के स्वास्थ्य का नाश कर रहा है ॥२१॥

ग्रामेषु कार्यकर्त्तारो, बाह्यशुद्धेः शुभायतिम्।
महत्त्वं बोधयेयुश्च, ग्राम्यान् ज्ञानविवर्जितान् ॥२२॥

गांवो में कार्य करने वाले लोग बाह्य शुद्धि के शुभ परिणामों को तथा इसके महत्त्व को अशिक्षित ग्रामनिवासियो को समझाए ॥२२॥

व्यवहारस्य शुद्धिश्च, शिक्षणीया प्रयत्नतः।
दुर्व्यवहारमूला वै, रुजः प्रायः प्रकीर्तिताः ॥२ ॥

व्यवहार की शुद्धि भी यत्नपूर्वक सिखाई जानी चाहिए। बुरे व्यवहारो के कारण ही बहुत से रोग उत्पन्न हुए माने जाते हैं ॥२३॥

ष्ठीवनं यत्र कुत्रापि, मलमूत्रविसर्जनम्।
श्लेष्मादिक्षेपणञ्चैव, गर्हणीयाः प्रवृत्तयः ॥२४॥

जहा कहीं थूक देना, मल मूत्र कर देना, नासिकामल फैंकना आदि निन्दनीय प्रवृत्तिया हैं ॥२४॥

एतास्तु वर्जनीयाः स्युः, महापातकसन्निभाः।
देशस्वास्थ्यस्य रक्षार्थं, दण्डनीया विशेषतः ॥२५॥

इन्हें महापाप के समान वर्जनीय समझना चाहिए। देश के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए, इन्हे विशेष रूप से दण्डनीय मानना चाहिए ॥२५॥

प्राचीनो नियमः शौचं, शास्त्रोक्तमाप्तसम्मतम्।
न हि जानन्ति हन्तैतन्महत्वं देशवासिनः ॥२६॥

'शौच', शास्त्रोक्त, तथा आप्त सम्मत प्राचीन नियम है। शोक, कि हमारे देशवासी लोग इसके महत्व को नहीं जानते ॥२६॥

शौचमारोग्यमूलं हि, शौचं स्वास्थ्यविवर्धनम् ।
शौचेनैवात्मनः शुद्धिः, प्रसादश्चेतसो भवेत् ॥२७॥

शौच अथवा शुद्धता ही आरोग्य का मूल है । यह स्वास्थ्य को बढ़ाने वाला है । शौच से ही आत्मा की शुद्धि होती है तथा चित्त की प्रसन्नता होती है ॥२७॥

युक्ताहारो द्वितीयं तु, स्यादनामयसाधनम् ।
नापेक्षते हि भपथ्यं, युक्ताहारव्रती नरः ॥२८॥

नियमित आहार, दूसरा आरोग्य का साधन है । नियमित आहार का सेवन करने वाला किसी औषधि की उपेक्षा नहीं करता ॥२८॥

हितं भुङ्क्ते मितं भुङ्क्ते, नापथ्य सेवते तु यः ।
फलशाकव्रती यस्तु, स चिरायुष्यमश्नुते ॥२९॥

जो हितकर भोजन करता है तथा मित भोजन करता है और कभी अपथ्य का सेवन नहीं करता—जो फल और शाक का खाने वाला है, वह दीर्घायुष्य को प्राप्त करता है ॥२९॥

नामिषं मानुषाहारः, तत् पिशिताशनाशनम् ।
हिंसया प्राणिनां प्राप्त, कथमन्नं सुखावहम् ॥३०॥

मास मनुष्य का भोजन नहीं है । वह तो राक्षसों का भोजन है । प्राणियों की हिंसा से प्राप्त अन्न किस तरह सुखकारक हो सकता है ॥३०॥

शरीरं तु नृणां मन्ये, मेध्यमीश्वरमन्दिरम् ।
परासृग्रञ्जन तस्य, जानामि पातक महत् ॥३१॥

मनुष्य का शरीर तो ईश्वर का पवित्र मन्दिर माना जाता है ।

उसको सरों के खून से रंगना, मै महापाप मानता हूँ ॥३१॥

न मांसाहारिणः शक्ताः, नीरोगाः सबलास्तथा ।
यथा शाकभुजो दृष्टास्तपःक्लेशसहाः पुनः ॥३२॥

मासाहारी लोग उतने शक्तियुक्त, नीरोग और बलवान् नहीं होवे, न ही तप के क्लेश को सहन करने वाले होते हैं—जितने सब्जी को खाने वाले ॥३२॥

दुग्धं यन्न बलाद् दुग्धं, भवेत्तच्छ्रेष्ठभोजनम् ।
प्राणिनो वधरूपा तु, हिंसा तस्मिन्न विद्यते ॥३३॥

जो दूध बलपूर्वक नहीं दुहा गया—वह श्रेष्ठ भोजन होता है। प्राणियो की वधरूप हिंसा उसमें नहीं होती ॥३३॥

अतस्तदशनं योग्यं, स्यान्निरामिषभोजिनाम् ।
किञ्चैतत् सात्विकाहारः, सर्वेषां पुष्टिवर्धनः ॥३४॥

इसलिए निरामिष भोजियो के लिए दूध का आहार उपादेय है। फिर यह आहार सात्विक है, तथा सब को पुष्टि देने वाला है ॥३४॥

अनुभवेन मन्ये च, फलान्युत्तमभोजनम् ।
स्वयं प्रकृतिदत्तानि, प्राप्याणि हिंसया विना ॥३५॥

मैं अपने अनुभव से जानता हूँ कि फल उत्तम भोजन है। ये प्रकृति द्वारा स्वयं दिए जाते हैं और हिंसा के बिना प्राप्त होते हैं ॥३५॥

लोको जिह्वावशीभूतो, रसनारसलोलुपः ।
प्रकृत्यन्नं परित्यज्य, पक्वान्नानि जिघत्सति ॥३६॥

लोग जिह्वा के वश में होकर रसना के रस से आकृष्ट हुए २ प्रकृति के अन्न को छोड़कर पके हुए अन्नो को खाते हैं ॥३६॥

तीक्ष्णमरिचसंपृक्तं, तिक्ताम्लतैलचिक्कणम् ।
नष्टसारं त्रिपक्कान्नं, फल्गु नारोग्यवर्धनम् ॥३७॥

तेज़ मिरचों से भरा हुआ, तीखा, खट्टा तथा तेल से चिकना, सारहीन, फीका, पका हुआ अन्न आरोग्य को बढ़ाने वाला नहीं होता ॥३७॥

ताम्बूलचायपेयादि-व्यसनानि नवानि वै ।
स्वास्थ्यहानिकराण्येव, कारयन्ति वृथा व्ययम् ॥३८॥

तम्बाकू, चाय, शराब आदि के व्यसन नए ही हैं । ये स्वास्थ्य का नाश करने वाले हैं और व्यर्थ व्यय कराने वाले हैं ॥३८॥

मद्यपानं निषिद्धं स्यात्, सर्वथा सर्वजातिषु ।
नैतस्मादधिकं किञ्चित्, सर्वनाशनमुच्यते ॥३९॥

शराब पीना सब जातियों मे सर्वथा निषिद्ध होना चाहिए । इससे बढ़ कर सर्वविनाशक वस्तु और कोई नहीं है ॥३९॥

वित्तनाशो महान् स्वास्थ्य-विनाशश्चातिदुःसहः ।
चारित्र्यसर्वनाशश्च, सुरापानेन दृश्यते ॥४०॥

सुरापान से धन का अत्यधिक नाश होता है, असह्य स्वास्थ्य-नाश होता है और चरित्र का सर्वनाश होता है ॥४०॥

राष्ट्रस्य घातकं नैव, दरिद्राणां विशेषतः ।
मद्यपानेतरं किञ्चिद्दण्डनीयमतस्तु तत् ॥४१॥

मद्यपान राष्ट्र का घातक है । विशेषतया दरिद्रों का इससे बढ़ कर दण्डनीय अपराध और कोई नहीं ॥४१॥

एवमाहारपानादि-नियमैः देशवासिनः ।
संयमिनो विमोक्ष्यन्ते, व्याधिसन्तापकिल्विषैः ॥४२॥

इस तरह आहार पान आदि के नियमों से देशवासी लोग संयमी होकर रोग-सन्ताप और पापों से छूट जाएंगे ॥४२॥

संयमः परमं स्वास्थ्य-साधनं समुदाहृतम् ।
ब्रह्मचर्यमिति ख्यातं, निगमागमसंस्तुतम् ॥४३॥

संयम स्वास्थ्य का परम साधन कहा गया है। निगम तथा आगमों में 'ब्रह्मचर्य' नाम से इसकी महिमा वर्णन की गई है ॥४३॥

मनोजविजयो ज्ञातो, ब्रह्मचर्यं न केवलम् ।
इन्द्रियाणां तु सर्वेषां, विजयस्तत्प्रकीर्तितम् ॥४४॥

ब्रह्मचर्य्य का अर्थ केवल कामवासना पर विजय प्राप्त करना नहीं। इसका अर्थ तो सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना है ॥४४॥

स्थिरवीर्यो नरो ब्रह्म-चर्येण शक्तिसञ्चयम् ।
कृत्वा विजयते व्याधीन्, दुर्बलानात्मसंयमी ॥४५॥

आत्मसंयमी मनुष्य स्थिरवीर्य्य होकर ब्रह्मचर्य्य द्वारा शक्ति का संचय करके अपने से दुर्बल व्याधियों पर विजय प्राप्त करता है ॥४५॥

नीरोगाः शक्तिसम्पन्ना ऋषय ऊर्ध्वरेतसः ।
अखण्डब्रह्मचर्येण, मृत्युमपि पराभवन् ॥४६॥

ऋषि लोग रोग से रहित, शक्ति से युक्त, ऊर्ध्वरेता होकर अखंड ब्रह्मचर्य्य द्वारा मृत्यु को पराभूत करते थे ॥४६॥

एष मे दृढविश्वासो, ब्रह्मचर्येण चेदहम् ।
अवसं जीवनं सर्वमभूवं शक्तिमत्तरः ॥४७॥

यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि मै सारा जीवन ब्रह्मचर्य्य द्वारा व्यतीत करता तो मै अधिक शक्तिशाली होता ॥४७॥

दम्पती परिणीतायां, दशायां संयतौ स्थितौ ।
शक्नुतो ब्रह्मचर्येण, कर्तुं सन्ततिनिग्रहम् ॥४८॥

पति पत्नी विवाहित अवस्था में भी संयम से रहते हुए, ब्रह्मचर्य्य द्वारा सन्तति निग्रह करने में समर्थ हो सकते हैं ॥४८॥

रसनासंयमश्चापि, परमावश्यको मतः ।
केवलं रसनातृप्त्यै, मानवस्तु न जीवति ॥४९॥

जीभ का संयम भी परम आवश्यक माना गया है। केवल रसना की तृप्ति के लिए मनुष्य नहीं जीता ॥४९॥

ब्रह्मचारी सदा स्वस्थो, नीरोगः शुभ्रकांतिमान् ।
सञ्चितात्मबलेनैव, परमानन्दमश्नुते ॥५०॥

ब्रह्मचारी स्वस्थ, नीरोग और शुभ कान्ति वाला होकर, संचित किये हुए आत्मिक बल से, परम आनन्द को प्राप्त होता है ॥५०॥

आहारः स्वल्प एव स्यादुत्तमो जीवनोचितः ।
भुञ्जानस्त्वधिकं भोगी, भवत्येव हि पापभुक् ॥५१॥

भोजन थोड़ा ही जो जीवन यात्रा के लिए पर्याप्त हो, उत्तम होता है। इससे अधिक खाता हुआ भोगी पाप का भागी होता है ॥५१॥

ज्वरादिधातुवैषम्यमायतिः स्यादसंयतेः ।
संयमी संयमेनैव, सर्वरोगान् चिकित्सति ॥५२॥

ज्वर आदि धातु की विषमता, असंयम का परिणाम होता है। संयमी संयम से ही सब रोगों की चिकित्सा करता है ॥५२॥

प्राकृतिकोपचारैर्वा, स तानपनिनीषति।
उपवासैः कटिस्नानैः, सूर्यस्नानैर्मृदादिभिः ॥५३॥

वह प्राकृतिक उपचारों से, उपवास से, कटिस्नान से, सूर्य्यस्नान से और मट्टी आदि के इलाज से उन रोगों को दूर करना चाहता है ॥५३॥

विशेषज्ञाः प्रमाणं स्युरुपचारेषु सर्वदा।
आरोग्य-साधनैरेवं, मुच्यन्ते व्याधिभिर्नराः ॥५४॥

इन उपचारो में विशेषज्ञ ही सदा प्रमाण होते हैं। मनुष्य आरोग्य के साधनों द्वारा व्याधियों से छूट जाते हैं ॥५४॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां रोगार्तिनाशनं नामैकादशोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में रोगार्तिनाशन नाम एकादश अध्याय समाप्त

द्वादश अध्याय

श्रीमोहन उवाच

आधिभौतिकदुःखस्य, कथयामि प्रतिक्रियाम्।
यद् भौतिकपदार्थानां, दुष्टविभजनोत्थितम् ॥१॥

श्री मोहन ने कहा

अब मैं आधिभौतिक दुःख का प्रतिकार बतलाता हूं, जो भौतिक पदार्थों के दोषयुक्त विभजन से उत्पन्न होता है ॥१॥

धनाढ्या नावगच्छन्ति, वित्तं कस्यापि न स्वकम्।
दरिद्राणां कृते दत्तो, निक्षेपः परमात्मनः ॥२॥

धनाढ्य लोग नहीं जानते कि धन किसी का अपना नहीं है। यह परमात्मा की तरफ से दरिद्रों के लिए उनके हाथ में अमानत रूप में रखा गया है ॥२॥

यस्त्वात्मम्भरितारक्तः, रतः स्वोदरपूरणे।
पापीयान् केवलादी सः, केवलाघो निगद्यते ॥३॥

जो पुरुष अपने पेट भरने में लगा हुआ है, और स्वार्थयुक्त है, वह अकेला खाने वाला पापी अकेला पाप करने वाला कहा जाता है ॥३॥

परार्थनिरपेक्षो यो, न स स्याद् भगवत्प्रियः।
भगवान् प्रीयते तस्य, प्रेयांसो यस्य दुर्गताः ॥४॥

जो परार्थ का कभी ध्यान नहीं करता, वह भगवान् का प्रिय नहीं हो सकता। भगवान् उससे प्रेम करते हैं, जिसको निर्धन लोग प्रिय हैं ॥४॥

दीनार्तिनाशनं भूयो, वदामि धर्ममुत्तमम्।
निर्धनानां समुद्धर्त्ता, स्थेयः श्रेयः समश्नुते ॥५॥

मैं दीनार्तिनाशन को बार-बार उत्तम धर्म कहता हूं। निर्धनों का उद्धार करने वाला स्थिर कल्याण को प्राप्त करता है ॥५॥

वैषम्यं दृश्यते यत्तु, संसाराशान्तिकारणम्।
तन्मन्ये धनगृध्नूनां, जघन्यवासनाफलम् ॥६॥

संसार में अशान्ति का कारण जो विषमता दिखाई देती है, वह मैं समझता हूँ, धन के लोभियो की कुत्सित वासनाओ का फल है ॥६॥

नाहं पश्यामि साधीयः, साधनं साम्यवादिनाम्।
हिंसया ये जिहीर्षन्ति, धनिनां सकलं धनम् ॥७॥

मैं साम्यवादियो के साधन को उत्तम नहीं समझता, जो लोग हिंसा द्वारा धनियों के सब धन को हर लेना चाहते हैं ॥७॥

भारतं धर्मभूरेषा, मान्यात्र धर्मभावना।
अतः साधुप्रयोगं तु, मन्येऽत्र धर्मसाधनम् ॥८॥

यह भारत धर्मभूमि है। यहां पर धर्म्म की भावना माननीय है। इसीलिए मैं धर्म्म के साधनों को ही उत्तम समझता हूं ॥८॥

साम्ना स्नेहेन किं वापि, सत्याग्रहप्रयोगतः।
शक्ताः स्युः धनवन्तोऽपि, धनं त्याजयितुं स्वकम् ॥६॥

साम द्वारा स्नेह से तथा सत्याग्रह के प्रयोग से धनवान् लोग भी अपने धन का त्याग करने करने योग्य बनाए जा सकते हैं ॥६॥

प्रकृतिः केवलं तावदन्नं सञ्जनयत्यथ।
यावद् भवेत्तु पर्याप्तं, सर्वेषां प्राणिनां कृते ॥१०॥

प्रकृति केवल उतना ही अन्न पैदा करती है, जितना सब प्राणियों के लिए पर्याप्त हो ॥१०॥

य पुनः सञ्जिघृत्तन्ति, वित्तराशींस्तु पुष्कलान् ।
चोरयन्तोऽन्नमन्येषा , त्तुधितान् कुर्वते परान् ॥११॥

जो व्यक्ति वहुत धन की राशि एकत्रित करना चाहते हैं, वे दूसरों के अन्न को चुराते हैं और उन्हें भूखा बनाते हैं । ११॥

वरं भित्ताशनं मन्ये, वरञ्चानशनव्रतम् ।
त्तुधितानामसृग्रक्तं, न पुनः वित्तवैभवम् ॥१२॥

मैं भीख मांग कर खाना अच्छा समझता हूं और उपवास रखना भी उचित मानता हूँ । परन्तु भूखों के खून से रगे हुए धन दौलत को लेना अच्छा नहीं मानता ॥१२॥

समो वित्तविभागस्तु, भवेन्न्यायानुमोदितः ।
संसारप्राणिनः सर्वे, तेन स्युः सुखिनः समाः ॥१३॥

धन का विभाग समान रूप से होना न्याय के अनुकूल है । इससे सब संसार के प्राणी समान रूप से सुखी हो सकते हैं ॥१३॥

कतिचिद् धनसम्पन्नाः, उत्तुङ्गसौधवासिनः ।
कौशेयपरिधानाश्च, षड्रसास्वादिनः सदा ॥१४॥

कुछ लोग धन सम्पन्न हों, ऊँचे २ महलों में रहने वाले हो, रेशमी वस्त्र पहनते हो और षड्रस भोजन का स्वाद लेते हों ॥१४॥

संख्यातीता दरिद्राश्च, निर्गेहा हि निराश्रयाः ।
निर्वस्त्रा जीर्णवस्त्रा वा, बुभुत्ताक्षोभपीडिताः ॥१५॥

नहि मे प्रतिभात्येष, समाजरचनाक्रमः ।
दुर्विधानां दरिद्राणां, सन्तापो दुःसहो मम ॥१६॥

ग्रामस्था नगरस्थाश्च, श्रमिणः श्रमजीविनः ।
विद्वांसः शित्तिताश्चैव, कृषिका व्यवसायिनः ॥१७॥

क्लिष्टकर्मकरा देश-सम्पदुत्पादिनः किल ।
वसनान्नसुसम्पन्नाः, सर्वे सन्तु निरामयाः ॥१८॥

और असंख्य लोग दरिद्र हों घर से रहित हो, आश्रयहीन हो, बिना वस्त्र के हो अथवा फटे चीथड़े पहनने वाले हों और भूख के सन्ताप से पीड़ित हों ॥१५॥

मुझे समाज की रचना का यह क्रम पसन्द नहीं । मेरे से दुःखियो और दरिद्रों का सन्ताप सहन नहीं किया जा सकता ॥१६॥

ग्राम में रहने वाले, नगर में रहने वाले, श्रम जीवी लोग, विद्वान् एवं शिक्षित लोग किसान और व्यवसायी ॥१७॥

कठिन कामो के करने वाले, ये सब लोग देश की सम्पत्ति को पैदा करने वाले हैं । ये सब वस्त्र और अन्न से पूर्ण हों, रोग रहित हो यही मेरी कामना है ॥१८॥

धनाढ्यैरभिभूतानां, समाजान्यायदुःखिनाम् ।
दरिद्राणां समुद्धारं, स्वध्येयं धारयाम्यहम् ॥१९॥

धनियों से दबाए हुए, समाज के अन्याय से दुःखी, गरीबो के उद्धार को ही, मैं अपने जीवन का ध्येय मानता हू ॥१९॥

"न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्तिनाशनम्" ॥२०॥

मैं राज्य नहीं चाहता, न स्वर्ग चाहता हूं, न मोक्ष । मैं दुःख से संतप्त प्राणियो के दु ख नाश की कामना करता हूं ॥२०॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां दारिद्र्यार्तिनाशनं नाम द्वादशोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग मे
दारिद्रययार्तिनाशन नाम द्वादश अध्याय समाप्त

त्रयोदश अध्याय

राजेन्द्र उवाच

दारिद्र्यदुःखसन्तापः, संसारश्रमजीविनाम् ।
प्राचीनः श्रूयमाणोऽयं, दृश्यमाणः सनातनः ॥१॥

राजेन्द्र ने कहा

दरिद्रता का दुःख संसार के श्रमजीवियों को बहुत प्राचीन समय से सुनाई दे रहा है और दिखाई दे रहा है ॥१॥

कथं धनपतीनां तु, धनगर्धां विवर्धिताम् ।
शक्ष्यसि त्वं वशीकर्तुं, संसाराशान्तिकारिणीम् ॥२॥

कैसे आप पूंजीपतियो की बढ़ती हुई धनगर्धा को जो संसार की अशान्ति का कारण है, वश में कर सकते हैं ॥२॥

यन्त्राणाञ्च विशालानां, युगं लोहस्य मोहन ।
किं क्षुद्रव्यवसायैस्त्वं, देशोद्धारं विधास्यसि ॥३॥

हे मोहन ! आजकल बड़ी २ मशीनो का युग है । आप छोटे २ व्यवसायों से देश का उद्धार कैसे कर सकेंगे ? ॥३॥

लोहं लोहेन भग्नं स्यान्न पुनर्नलिनीदलैः ।
अनल्पव्यवसायानां, तादृशैः प्रतियोगिता ॥४॥

लोहा लोहे से टूट सकता है, कमल के पत्तों से नहीं । बड़े व्यवसायों का मुकाबला बड़ों से ही हो सकता है ॥४॥

नाहं जानामि देशस्य, विशालस्यास्य स्वल्पकैः ।
व्यवसायैः समुद्धारं, सम्भाव्यं तु कथञ्चन ॥५॥

मैं नहीं समझता कि इस विशाल देश का छोटे २ व्यवसायों से किसी तरह उद्धार सम्भव हो सकता है ॥५॥

आर्थिकी सुव्यवस्था तु, कीदृशी तव सम्मताः ।
यया संसारदारिद्र्य-विनाशं कर्तुमिच्छसि ॥६॥

आपको समाज की आर्थिक की व्यवस्था कैसी स्वीकार है, जिसके द्वारा आप संसार की दरिद्रता का नाश करना चाहते हैं ॥६॥

श्रीमोहन उवाच

सत्यं विश्वस्य कल्याणं, मन्येऽल्पव्यवसायतः ।
अतस्तु व्यवसायांस्तानुद्दिधीर्षामि शक्तितः ॥७॥

श्री मोहन ने कहा,

सच है, मै संसार का कल्याण छोटे व्यवसायों से ही मानता हूं। इसलिए, यथा-शक्ति उन्हीं व्यवसायों का उद्धार करना चाहता हूं ॥७॥

महायन्त्राणि संसार-यन्त्रणाकारणान्यथ ।
स्वीकुर्वे सर्वदुःखानां, बीजानि नरपुङ्गव ॥८॥

बड़े २ यंत्र संसार की यंत्रणा के ही कारण हैं । हे नारायण ! मैं उन्हें सब दुःखों का बीज समझता हूं ॥८॥

अपि यन्त्राणि सर्वाण्यगाधजलनिधेस्तलम् ।
प्रापितानि भवेयुश्चेन्न संसारक्षतिर्भवेत् ॥९॥

यदि संसार के सब यन्त्र समुद्र में डुबो दिये जाएं तो संसार की हानि नहीं हो सकती ॥९॥

अभवंस्तु क्रियाः सर्वाः, पूर्वं यन्त्रैः विनाप्यहो ।
को ऽयं नव्यश्चमत्कारो, यन्त्रवादस्य मोहनः ॥१०॥

पहिले भी यन्त्रों के बिना सब काम होते थे। यंत्रवाद का यह कौन सा मोहने वाला चमत्कार है ! ॥१०॥

यन्त्रैस्तु जीविकाहीनाः, श्रमिणो वृत्तिवर्जिताः ।
क्षुधासन्तापतीव्राग्नौ, तप्यन्ते भग्नचेतसः ॥११॥

यंत्रों से तो श्रमी लोग जीविका से हीन हुए हुए, वृत्ति से रहित होकर भूख की तीव्र अग्नि में भग्न चित्त वाले संतप्त होते हैं ॥११॥

स्वल्पानामुपकारः स्यादपकारश्च भूयसाम् ।
येन तत्तु कथं श्रेय उपादेयं भवेत् पुनः ॥१२॥

थोड़ो का जिसमें उपकार हो और बहुतों का अपकार हो। वह वस्तु कैसे कल्याणकारी हो सकती है, या ग्रहण करने योग्य हो सकती ॥१२॥

महायन्त्रप्रयोगं तु, साधु मन्ये तदैव तु ।
सर्वलोकहितार्थाय, वस्तूत्पत्तिर्भवेद् यदा ॥१३॥

मैं महा यंत्रों का प्रयोग उन्हीं वस्तुओं के लिए उत्तम समझता हूं जो सब लोगों के हित के लिए हों ॥१३॥

बहूनां जीविकाहानिं, विना सम्पाद्यमेव यत् ।
सुसूक्ष्मावश्यकं चैव, क्षम्या यन्त्रैस्तु तज्जनिः ॥१४॥

जो वस्तुएं बहुत लोगों की जीविका की हानि न करके उत्पन्न हो सकती हों, और अत्यन्त सूक्ष्म और आवश्यक हो, उन्हीं की उत्पत्ति यंत्रों द्वारा क्षमा के योग्य है ॥१४॥

अग्निप्रशमने किञ्च, दुर्भिक्षे लोकपीडके ।
प्रकृतेश्चण्डकोपानां, शमनार्थं तथैव च ॥१५॥
आकस्मिकाशुसाध्यानां, कार्याणां साधनाय च ।
लोककल्याणसिद्ध्यर्थं, साधीयो यन्त्रसाधनम् ॥१६॥

अग्नि को शान्त करने के लिए अथवा लोक नाशक दुर्भिक्ष के समय, प्रकृति के प्रचण्ड कोप को शान्त करने के लिए, अचानक और जल्दी करने योग्य कामों को सिद्ध करने के लिए, अथवा लोककल्याण करने के लिए, यंत्रों का प्रयोग करना उचित है ॥१५ १६॥

परं साधनयन्त्राणां, प्रयोगं विदधन्नरः !
स्वयं न स्याच्छ्रमाशक्तः, केवलं जडसाधनम् ॥१७॥

परन्तु इन साधन यंत्रों का प्रयोग करने वाला मनुष्य स्वयं श्रम के अयोग्य न बन जाए और केवल जड़ उपकरण न बन जाए ॥१७॥

न चातिकालमप्येव, नीरसा यान्त्रिकीक्रियाः ।
कुर्वाणो विस्मरेन्मूढो, जीवितध्येयमात्मनः ॥१८॥

बहुत समय तक यंत्र की नीरस क्रियाओं को करता हुआ मनुष्य मूर्खतावश अपने जीवन के ध्येय को न भूल जाए ॥१८॥

नेदं मनुष्यजन्मास्ति, धननिर्वर्तनात्मकम् ।
आध्यात्मिकविकासो वै तल्लक्ष्यं परमं मतम् ॥१९॥

यह मनुष्य जन्म केवल धन उत्पन्न के लिए नहीं । आत्मिक उन्नति करना भी उसका परम लक्षण माना जाता है ॥१९॥

करश्रमेण वृत्त्यर्थं, स्वल्पोपकरणैरथ ।
अत्यावश्यकयन्त्रैश्च, वित्तमुत्पादयेन्नरः ॥२०॥

मनुष्य जीविका के लिए, हाथ की मेहनत से या छोटे २ उपकरणों से, अथवा आवश्यक यंत्रों द्वारा धन उत्पन्न करें ॥२०॥

स्वाश्रितस्तु नरः श्रेयान्, स्वयं पर्याप्तसाधनः ।
परश्रममनाश्रित्य, वर्तमानः प्रशस्यते ॥२१॥

स्वावलम्बी मनुष्य, अपने में पर्याप्त साधन वाला अच्छा होता है। दूसरे श्रम पर आश्रय न करके गुजारा करता हुआ पुरुष प्रशंसित किया जाता है ॥२१॥

नियमो नानिवार्योऽयं, यस्तु परस्पराश्रयः ।
स्वाश्रयी स्वावलम्बो तु, स्वसन्तुष्टः प्रसीदति ॥२२॥

परस्पर आश्रय करने का नियम अनिवार्य्य नहीं हैं। जो व्यक्ति अपने सहारे पर खड़ा होता है, वह अपने से सन्तुष्ट होता हुआ प्रसन्न रहता है ॥२२।

देशोऽप्यात्माश्रितो मन्ये, स्वपर्याप्तः सुखी भवेत् ।
धनधान्यसुसम्पन्नो, व्यवसायकृषिप्रियः ॥२३॥

देश भी, मै समझता हू, अपने पर आश्रय करता हुआ और अपने मे पर्याप्त धन और धान्य से सम्पन्न और कृषि एवं व्यवसाय से पूर्ण सुखी रहता है ॥२३॥

अन्तर्जातीयवाणिज्यव्यापारं यः समाश्रितः ।
देशः सङ्ग्रामकाले स, क्षुधार्तस्तु विषीदति ॥२४॥

जो देश दूसरी जातियो के साथ व्यापार पर आश्रित है, वह युद्ध के समय, भूखा होकर दुःखी होता है ॥२४॥

किञ्चापि क्षुद्रदेशानां, बलात्कारेण हिंसया ।
राजनोतिकसत्तायाः, प्रभावेण विशेषतः ॥२५॥
व्यापारः परराष्ट्रेषु, प्रायस्तु सम्भवो भवेत् ।
अतोऽहिंसाव्रता देशस्तद् व्यापारं परित्यजेत् ॥२६॥

इसके अतिरिक्त छोटे देशों पर हिंसा अथवा बलात्कार करने से तथा विशेषतया राजनैतिक दवाव डालने से दूसरे देशों मे प्रायः व्यापार

सम्भव हो सकता है। अतः अहिंसावृत्ति देश उस अन्तर्जातीय व्यापार को छोड़ दे ॥२५, २६॥

येषां पुनः पदार्थानां, स्वदेशेऽसम्भवा जनिः।
कृच्छ्रसाध्याऽथवा तेषां, व्यापारस्तु वरं भवेत् ॥२७॥

जिन पदार्थों की अपने देश मे उत्पति असम्भव हो या बहुत कष्ट से हो सकती हो, उन वस्तुओं का व्यापार उचित हो सकता है ॥२०॥

नाहं श्रमविभागं तं, पृथग्राष्ट्रव्यवस्थितम्।
अभिनन्दामि येन स्यादत्यन्तान्योन्यसंश्रयः ॥२८॥

मैं भिन्न २ राष्ट्रों में किये गये श्रम विभाग को अच्छा नहीं समझता, जिससे परस्पर अत्यन्त आश्रय उत्पन्न हो जाता है ॥२८॥

सुजला सुफला मातृ-भूरेषा भारतस्य मे।
सुसस्यश्यामला फुल्ल-कुसुमद्रुमशालिनी ॥२६॥

मेरे भारतवर्ष की यह मातृ-भूमि जल से पूर्ण है, फल और फूलों से पूर्ण है। यह धन और धान्य से हरी-भरी है, और प्रफुल्लित वृक्षों और बेलों से शोभित है ॥२६॥

हिरण्यप्रसवित्री सा, रत्नगर्भा वसुन्धरा।
सुखदः पवनो ह्यत्र, सलिलममृतोपमम् ॥३०॥

यह सोने को पैदा करने वाली है। इसके गर्भ में रत्न तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थ हैं। यहां की वायु सुख देने वाली है और अमृत के समान है ॥३०॥

प्रचुरान्नसमाकीर्णाः, प्रदेशाश्चात्र मञ्जुलाः।
अलं भोज्यप्रदानाय, कृत्स्नदेशाय सर्वथा ॥३१॥

यहां के प्रदेश सुन्दर एवं प्रचुर अन्न से परिपूर्ण है । वह समस्त देश को भोजन देने के लिए पर्याप्त हैं ॥३१॥

सामग्री व्यवसायानां, पुष्कला यत्र तत्र तु ।
यया देशसमृद्धिः स्यादात्मपर्याप्तता तथा ॥३२॥

व्यवसायों का कच्चा माल यहां पर्याप्त मात्रा में है, जिनसे देश की समृद्धि हो सकती है और अपने मे पूर्णता हो सकती है ॥३२॥

नहि पश्यामि राष्ट्रस्य, भारतस्यास्य सर्वथा ।
प्राचुर्यं वीक्ष्य साधीयः, परराष्ट्रावलम्बनम् ॥३३॥

मैं अपने राष्ट्र भारतवर्ष की, इस बहुतायत को देख करके, दूसरे राष्ट्रों पर उसका आश्रित होना उत्तम नहीं समझता ।

अत्र ग्रामाः सुसम्पन्नाः, सुस्मयोल्लसिताननाः ।
सदात्मनिर्भरा भूयो, भवेयुः कामना मम ॥३४॥

यहां गाव सुसम्पन्न हों, आनन्द से उल्लसित मुख वाले हो, सदा अपने पर निर्भर करने वाले हो, यही मेरी कामना है ॥३४॥

पायं पायं पयः प्रेम्णो, ध्यायं ध्यायं मिथः शुभम् ।
गायं गायं मुदां गीतं, ग्रामाः समृद्धिमाप्नुयुः ॥३५॥

प्रेम के दूध को बारम्बार पीते हुए, परस्पर कल्याण का चिन्तन करते हुए और सदा आनन्द के गीत गाते हुए, ग्राम समृद्धि को प्राप्त हो ॥३५॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां दरिद्रयार्तिनाशनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में दारिद्र्यार्तिनाशन नाम त्रयोदश अध्याय समाप्त ।

चतुर्दश अध्याय

श्रीमोहन उवाच

कृषिः स्यात् प्रथमं तावद्, ग्रामसमृद्धिसाधनम् ।
वृत्तिः प्राणस्वरूपेयं, भारतस्य विशेषतः ॥१॥

श्री मोहन ने कहा

कृषि तो ग्राम की समृद्धि का प्रथम साधन है। यह भारत की विशेषतया प्राणस्वरूप जीविका है ॥१॥

देशः सम्पद्-विनाशेऽपि, यदेषोऽद्यापि जीवति ।
कारणं कृषिरेव स्यात्, सर्वकामफलप्रदा ॥२॥

यह देश सम्पत्ति के नष्ट होने पर भी जो आज तक जीता है, उसका कारण कृषि है, जो सब कामनाओं का फल देने वाली है ॥२॥

स्वाश्रितं भारतं वर्षं, धनान्नोत्पादनेऽभवत् ।
परं परावलम्बित्वं, प्रापितमधुना परैः ॥३॥

भारतवर्ष धनधान्य उत्पन्न करने में स्वाश्रित होता था, परन्तु अब वह दूसरों से परावलम्बी बना दिया गया है ॥३॥

वृद्धा भूर्भारतस्यास्य, न बाहुल्यप्रदायिनी ।
यथा पूर्वं तथाप्येव. प्रकामभोजनप्रदा ॥४॥

भारतवर्ष की वृद्ध भूमि, बाहुल्य को उत्पन्न नहीं कर सकती, परन्तु फिर भी वैसे पहले की तरह पर्याप्त भोजन देने वाली अवश्य है ॥४॥

'यद्यन्नं' न बहिर्गच्छेद्, देशादस्मात्कदाचन ।
सुखिनो धान्यसम्पन्नाः, भवेयुर्देशवासिनः ॥५॥

यदि इस देश से कभी अन्न बाहर न जाए, तो इस देश के रहने वाले धन-धान्य सम्पन्न और सुखी हो जाएं ॥५॥

वर्तमानार्थिकी नीतिः, राजकीया च पद्धतिः ।
भारतोद्योगमेतं तु, कृषिं नाशयते भृशम् ॥६॥

वर्तमान आर्थिक नीति तथा राजकीय व्यवस्था, भारत के इस प्रधान उद्योग कृषि को नाश करने वाले हैं ॥६॥

नीतिः साम्प्रतिकी भूम्यां, भूयःकरनिपातिनी ।
कर्कशैस्तु करैर्भग्नाः, बलहीनाः कृषीबलाः ॥७॥

आज कल की नीति कृषकों पर बहुत कर लगाने वाली है । किसान लोग कठोर करों से भग्न हुए २ बलहीन हो चुके हैं ॥७॥

हन्त देशान्नदातारः, कठोरश्रमकारिणः ।
म्रियन्ते क्षुधया मीनास्तृषिताःसलिले यथा ॥ ॥

शोक ! देश के अन्न दाता लोग, कठोर परिश्रम को करने वाले भूख से मर रहे हैं —जैसे पानी में प्यासी मछलिया ॥८॥

सुशासनव्यवस्थायां, कृषिका देशसम्पदः ।
तेषां कल्याणचिन्ता तु, धर्मो वै प्रमुखो मतः ॥६॥

किसी सुशासन की व्यवस्था मे कृषक लोग देश की सम्पत्ति होते हैं । उनके कल्याण की चिन्ता करना राष्ट्र का प्रमुख धर्म है ॥६॥

करादानप्रणाली स्यात्, शोभना तादृशी पुनः ।
यया तु न भवेज्जातु, कृषेः क्षोदीयसी क्षतिः ॥

कर लेने की प्रणाली वही उत्तम होती है, जिससे कृषि की थोड़ी भी हानि न होती हो ॥१०॥

न चावश्यकधान्यस्य, देशाय संग्रहे यथा।
प्रतिरोधो भवेत् कश्चित्, देशसमृद्धिनाशनः ॥११॥

जिससे देश के लिए आवश्यक अन्न उत्पन्न करने में रुकावट न हो और देश की समृद्धि का नाश न हो ॥११॥

कृषिकाश्च निरातङ्काः, निःशङ्का ईतिनिर्भयाः।
कृषिकर्मणि संसक्ताः, भवेयुर्बल्यपीडिताः ॥१२॥

किसान लोग निर्भय होकर, वृष्टि, अनावृष्टि आदि की शङ्का से रहित हुए २, करो से अपीड़ित, कृषि के कामों में लग्न होवें ॥१२॥

काले व्रीहियशालेय-यव्यकेदारमञ्जरी-।
मञ्जुलाञ्जलयः सौख्यं, वर्षन्तु वनदेवताः ॥१३॥

वन देवताए समय पर व्रीहि, शालि, यव आदि धान्यो की मञ्जरियो सहित शुभ अञ्जलियों से सुख की वर्षा करें ॥१३॥

तरवो वितरन्त्वेव, भूरिनम्राः फलोद्गमैः।
मधुरं सुन्दरं सान्द्रं, रसमायुष्यवर्धनम् ॥१४॥

फलों से बहुत झुके हुए वृक्ष सुन्दर सरस मधुर एवं आयुःवर्धक रस का वितरण करें ॥१४॥

ग्रामीणा मम देशस्य, किञ्च नगरवासिनः।
प्रचुरान्नफलैराढ्याः, वाढमुत्कर्षमाप्नुयुः ॥१५॥

मेरे देश के ग्रामीण तथा नगर निवासी लोग प्रचुर अन्न तथा फलों से भरपूर हुए २ अति उत्कर्ष को प्राप्त हों ॥१५॥

कृषिर्धाम समृद्धीनां, सदनं सम्पदां कृषिः।
सद्म चाभ्युदयस्य स्यात्, कृषिर्देशस्य जीवनम् ॥१६॥

कृषि समृद्धि का धाम है। कृषि सम्पत्ति का घर है। कृषि अभ्युदय का हेतु है। कृषि देश का जीवन है ॥१६॥

तत्कृते पशवो येऽपि, वृषभमहिषादयः।
सौरभेयी विशेषेण, सर्वे रक्ष्याः प्रयत्नतः ॥१७॥

उसके लिए जो भी बैल, भैंस आदि पशु हैं, और विशेषतया जो गौ है—उन सब की, प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिए ॥१७॥

गौः कृषिप्रसवित्री स्यात्, पयःपीयूषपायिनी।
जननी प्राणिनां तस्मान्मातेत्येवं सुविश्रुता ॥१८॥

गौ कृषि की माता है। दूध रूपी अमृत को पिलाने वाली है। यह सब प्राणियों की जननी है। इसलिए 'माता' इस तरह से वह प्रसिद्ध है ॥१८॥

अघ्न्या च सात्वहन्तव्या, गदिता निगमागमैः।
वधस्तस्याः भवेत्तस्मान्निजमातृवधोपम ॥१९॥

यह वेद आदि शास्त्रों से 'अघ्न्या' अथवा न मारने योग्य कही गई है। इस लिए उसका वध करना अपनी माता के वध के समान होता है ॥१९॥

गोरक्षाऽतो महान् धर्मो, महापुण्यं महाव्रतम्।
अहिंसायोगिनो योग्या, वृत्तिस्तु नैष्ठिकी मता ॥२०॥

इस लिए गोरक्षा महान् धर्म है। महापुण्य तथा महाव्रत है। यह अहिंसा योगी की नैष्ठिक वृत्ति कही गई है ॥२०॥

न केवलमपाङ्गानामशक्तानां गवां पुनः।
रक्षणं सस्यदानाद्यैः, गोपालनमुदीरितम् ॥२१॥

अङ्गहीन, अशक्त गौओं को घास आदि देने मात्र से रक्षा करना गोपालन नहीं कहलाता ॥२१॥

धेनूनामृषभाणाञ्च, जातिसत्वविवर्धनम्।
वैज्ञानिकप्रयोगैश्च, पोषणं पालनं स्मृतम् ॥२२॥

गौवो और बैलो का वैज्ञानिक प्रयोगों की सहायता से जाति बढ़ाना तथा पोषण करना सच्चा पालन कहलाता है ॥२२॥

बलवन्तो बलीवर्दाः, गोजातिरक्षणक्षमा।
अतस्तेषां प्रतिग्रामं, व्यवस्था शोभना भवेत् ॥२३॥

बलवान् बैल ही गौ जाति की रक्षा करने के समर्थ होते हैं। इसलिए प्रत्येक ग्राम मे उनकी उत्तम व्यवस्था करना उचित है ॥२३॥

किञ्च ते सैरिका युग्याः, धूर्वहाः शाकटा वृषाः।
नानाकर्मकृतस्तेषां, सुरक्षाऽवश्यकी मता ॥२४॥

इसके अतिरिक्त बैल हल चलाने, गाड़ी खेंचने आदि के नाना प्रकार के कामो में प्रयुक्त होते हैं। अतः उनकी अच्छी तरह रक्षा करना आवश्यक है ॥२४॥

महिष्यः सुखसन्दोह्याः, न ग्रीष्मर्तौ कदाचन।
दुग्धाय निर्मितास्ता न, सुव्रता धेनवः किल ॥२५॥

भैसे गर्मी की ऋतु में कभी सुख पूर्वक दोही नही जा सकतीं। वे दूध के लिए बनाई ही नहीं गई। इस काम के लिए तो गौवे बनाई गई हैं ॥२५॥

गोपालनमतो मन्ये, धार्मिकमार्थिकं व्रतम्।
गोहिंसां च महापापं, विश्वकल्याणघातकम् ॥२६॥

इसलिए गो पालन को मैं धार्मिक तथा आर्थिक कर्त्तव्य मानता हूं

और गोहिंसा को महान् पाप समझता हूं, जो विश्व के कल्याण का घातक है ॥२६॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां दारिद्र्यार्तिना-
शनं नाम चतुर्दशोऽध्याय:

श्री मन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में दारिद्र्यार्ति नाशन
नाम चतुर्दश अध्याय समाप्त

पञ्चदश अध्याय

श्रीमोहन उवाच

उद्योगाः कृषिसम्बद्धाः, ये कृषिसहयोगिनः।
तेषामपि समुद्धारो, देशसमृद्धिसाधकः ॥१॥

श्री मोहन ने कहा

जो उद्योग कृषि से सम्बद्ध हैं, और जो कृषि की सहायता करने वाले हैं, उनका उद्धार करना भी देश की समृद्धि को बढ़ाने वाला होता है ॥१॥

कृषिः प्रकृतिकोपस्य, दुष्काले भाजनं भवेत्।
द्वादशमासपर्यन्तं, श्रमापेक्षा न वा भवेत् ॥२॥

असमय में कृषि प्रकृति के काम का भी पात्र हो सकती है और फिर बारह महीने पर्यन्त इसके लिए श्रम की अपेक्षा होती है ॥२॥

अतो दुर्भिक्षारक्षार्थं, रिक्तकालात्ययाय च।
ग्रामोद्योगरताःस्युश्चेत्, कृषिकास्तत्र न क्षतिः ॥३॥

अतः दुर्भिक्ष से रक्षा करने के लिए और खाली समय का उपयोग करने के लिए, यदि कृषक ग्रामोद्योगों में संलग्न हो जायं तो इससे हानि नहीं है ॥३॥

अपि ते किञ्चिदल्पीयो-वित्तनिष्पादनक्षमाः।
अकिञ्चनदरिद्राणां, तदेव भूरिवैभवम् ॥४॥

वे कुछ थोड़ा सा भी धन उत्पन्न करने में इस तरह समर्थ हो सकते हैं। अकिञ्चन दरिद्र कृषकों के लिए वह ही महान् वैभव है ॥४॥

किञ्च तेनात्मसन्तुष्टिर्गरीय आत्मगौरवम्।
आत्मावलम्बनं चैव, वर्धेत ग्रामवासिनाम् ॥५॥

और इससे उनको आत्मसन्तुष्टि होती है और महान् आत्म-गौरव भी। इसके अतिरिक्त ग्राम-वासियों में स्वावलम्बन भी बढता है ॥५॥

ग्रामस्यैते ममुद्योगा:, भवेयुर्गृहवर्तिनः।
बाला वृद्धाः स्त्रियो येषां, शक्ता निर्वर्तने सदा ॥६॥

ग्राम के यह उद्योग घरों मे ही सम्पन्न हो सकते हैं। बालक बूढ़े और स्त्रियां भी इनको करने में समर्थ हो सकती हैं ॥६॥

अपुष्कलार्थसाध्या ये, श्लाघनीयास्तु ते मताः।
निर्धनैरपि निष्पाद्या उद्योगाः क्षेमकारिणः ॥७॥

ऐसे ग्रामोद्योग कल्याणकारी एवं प्रशंसनीय माने जाते हैं, जो अल्प-व्यय से सिद्ध हो सकते हो और जिन्हे निर्धन लोग भी सुगमता से सम्पन्न कर सकते हैं ॥७॥

महायन्त्रप्रयोगःस्याद्; ग्रामोद्योगेषु नो वरम्।
नरस्तु जड़यन्त्रं स्यात्, स्वयं तेषां प्रयोगतः ॥८॥

ग्रामोद्योगो मे भारी यंत्रों का प्रयोग उचित नहीं होता। मनुष्य उनके प्रयोग से स्वयं जड यंत्र बन जाता है ॥८॥

अथावश्यकवस्तूनां, भवेदुत्पादनं वरम्।
सार्वजनिकवस्तूनि, विक्रीयन्ते तु सत्वरम् ॥९॥

इसके अतिरिक्त ग्रामोद्योगो द्वारा, आवश्यक वस्तुओ का उत्पन्न करना ही उचित है, क्योंकि सार्वजनिक सर्वोपयोगी वस्तुएं जल्दी से बिक सकती हैं ॥९॥

ग्रामजामपदार्थानां, पूर्णैर्विनिमयो वरम्।
न भवेत् परराष्ट्रेभ्यो, देशसम्पत्तिनाशनः ॥१०॥

ग्राम में उत्पन्न कच्चे माल का दूसरे राष्ट्रो के पक्के माल से विनिमय करना उचित नहीं, क्यो कि इससे देश की संपत्ति नष्ट होती है ॥१०॥

परन्तु पूर्णता तेषां, ग्रामेष्वेवातिशोभना ।
भवेत् क्षेमावहा देश-दारिद्र्यदुःखनाशिनी ॥११॥

ग्रामों में उस कच्चे माल का पक्का बनाया जाना ही श्रेयस्कर है इससे देश का दारिद्रय नष्ट होता है ॥११॥

प्रतिगृहं प्रतिग्रामं, ग्रामजन्यानि सन्ततम् ।
स्ववस्तूनि प्रयुञ्जीरन्, स्वाधीना देशवासिनः ॥१२॥

ग्राम-ग्राम में, घर-घर मे, देशवासी लोग स्वाधीन होकर ग्रामोत्पन्न अपनी वस्तुओं का निरंतर प्रयोग करें ॥१२॥

स्वतन्त्राःस्वाश्रयाश्चैव, धनधान्यसमन्विताः ।
सर्वथैव हि भूयासुः, परेष्वनवलम्बिनः ॥१३॥

वे स्वतंत्र तथा स्वाश्रित होकर एवं धन धान्य से सम्पन्न हो कर सर्वथा दूसरो पर निर्भर न रहे ॥१३॥

ग्रामस्थव्यवसायानां, भूयः प्रोत्साहनं वरम् ।
तेषामेव समुत्कर्षे, देशनिःश्रेयसं स्मृतम् ॥१४॥

ग्रामोद्योगो का पूर्ण प्रोत्साहन करना उत्तम है, उन्हीं के उत्कर्ष से देश का कल्याण कहा जाता है ॥१४॥

पदार्थान् ग्रामजन्यांस्तु, प्रयुञ्जन्तो विशेषतः ।
नगरस्था विवृण्वन्ति, स्वदेशप्रीतिमुत्तमाम् ॥१५॥

ग्राम-जन्य पदार्थों का विशेष रूप मे प्रयोग करते हुए नागरिक लोग अपने देश के प्रति सच्चा प्रेम प्रदर्शित कर सकते हैं ॥१५॥

यन्त्रोत्पन्नपदार्थानां, प्रयोगो न वरं पुनः।
तेन तु धनवृद्धिः स्याद्, धनिनामेव सर्वदा ॥१६॥

यन्त्रों से उत्पन्न पदार्थों का प्रयोग अच्छा नहीं माना जाता। उससे तो धनियों के धन की ही सदा वृद्धि होती है ॥१६॥

स्वदेशिव्रतमित्येतन्नवो धर्मः श्रुतस्तु यः।
अद्यत्वे सभ्यदेशेषु, स दरिद्रदयाकरः ॥१७॥

स्वदेशी व्रत नाम से यह जो नया धर्म आजकल सभ्य देशों मे प्रचलित हुआ है, वह देश के दारिद्र्य निवारण का साधन है ॥१७॥

भूयसां वृत्तिहीनानां, स्वदेशग्रामवासिनाम्।
स्वशक्त्याभरणं श्रेयो, नेश्वराणां कदाचन ॥१८॥

अपने देश के बहुसंख्यक जीविकाहीन ग्रामवासियों का यथाशक्ति भरणःपोषण करना उत्तम है; न कि धनिकों का ॥१८॥

मम देशो विदेशीयैः, धनाढ्यैस्तु दरिद्रितः।
स्वसम्पत्तिविहीनःसन्, प्राणित्येव कथं कथम् ॥१९॥

मेरा देश विदेशी पूंजीपतियों द्वारा दरिद्र बना दिया गया है। वह अपनी सम्पत्ति से रहित होकर किसी तरह जी रहा है ॥१९॥

अत्र स्वदेशवस्तूनां, प्रेमा सुकृतमुत्तमम्।
विपरीतं महापापं, जननीहननोपमम् ॥२०॥

यहां स्वदेशी वस्तुओं से प्रेम करना, महान् पुण्य है। इसके विपरीत महान् पाप है और मातृ-हत्या के समान है ॥२०॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां दारिद्र्यार्ति-
नाशनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसा योग मे दारिद्रयार्ति-
नाशन नाम पञ्चदश अध्याय समाप्त

षोडश अध्याय

श्रीमोहन उवाच

अथोद्योगान् प्रवक्ष्यामि, ग्रामसम्पादनोचितान् ।
यै. पुनः सुखसम्पन्ना, भवेयुर्ग्रामवासिनः ॥१॥

श्री मोहन ने कहा

अब मै उन उद्योगो का वर्णन करूंगा, जो ग्रामो मे सम्पन्न हो सकते हैं और जिनसे ग्रामवासी पुनः सुखी हो सकते हैं ॥१॥

ग्रामसंस्कृतिरेव स्यात, संसारक्षेमकारिणी ।
तामेव द्रष्टुमिच्छामि, लोकेऽस्मिन् सप्रतिष्ठिताम् ॥२॥

ग्राम्य संस्कृति ही संसार के कल्याण को करने वाली हो सकती है । उसी को इस संसार में मै स्थापित देखना चाहता हूं ॥२॥

नागरी सभ्यता ह्येषा, वर्तमाना न मे प्रिया ।
यस्यां तु धनिको दीनरुधिराणि पिपासति ॥३॥

वर्तमान नागरिक सभ्यता मुझे प्रिय नही है, जिसमें धनी लोग गरीबो का ख़ून पीना चाहते हैं ॥३॥

हन्तैतस्याः प्रभावोऽयं, यन्नराः स्वार्थकेन्द्रिताः ।
परार्थमणुमप्येव, न चिकीर्षन्ति सर्वथा ॥४॥

शोक ! इसी सभ्यता का यह प्रभाव है कि मनुष्य स्वार्थ में लिप्त होकर, दूसरे का अणुमात्र भी भला नहीं करना चाहते ॥४॥

एतान्यट्टालिकावन्ति, हर्म्याण्यभ्रंलिहानि च ।
मन्ये ग्रामकुटीराणां, दाहभस्मचितानि तु ॥५॥

यह अट्टालिकाओं वाले गगनचुम्बी प्रासाद, मै समझता हूं, कि ग्राम्य-कुटीरों के भस्मावशेषों पर चिने गये हैं ॥५॥

नायं न्यायः समाजस्य, यदल्पीयांस उद्धताः ।
उन्मत्तास्तु पदन्यास, कुर्युः शीर्षेषु भूयसाम् ॥६॥

यह सामाजिक न्याय नही है कि कुछ थोड़े से उद्धत और उन्मत्त लोग बहुतों के शिरों को कुचलते हुए चलें ॥६॥

शुभ्राकाशवितानेषु, निर्मलानिलगन्धिषु ।
ग्रामेषु ससुखावासान्, द्रष्टुं सर्वांस्तु कामये ॥७॥

मैं शुभ्राकाश के चन्दोवे वाले, स्वच्छ वायु से सुगन्धित ग्रामों मे सब लोगों को सुखपूर्वक रहता हुआ देखना चाहता हूं ॥७॥

अह पुराणि सर्वत्र, प्रमार्ज्य मञ्जुलान्यथ ।
ग्रामोद्वसितान्येव, विनिर्मित्सामि सर्वतः ॥८॥

मै शहरों को मिटाकर सुन्दर ग्रामों की बस्तियों को सब तरफ बसाना चाहता हूँ ॥८॥

प्रत्युटजं नरा नार्यः, सन्तोपतृप्तमानसाः ।
समुद्योगरताश्चैव, भवेयुर्भावना मम ॥९॥

हर झोपड़ी में नर-नारी, सतोष से तृप्त मन वाले होकर, उद्योगों में लग जावें, ऐसी मेरी कामना है।॥९॥

स्पर्धाहीनास्तथान्योन्यप्रमोदवेदनाविदः ।
अदरिद्रा अनाढ्याश्च, समानं सौख्यमाप्नुयुः ॥१०॥

स्वार्थ से हीन होकर, परस्पर सुख-दुःख का अनुभव करने वाले, अतिदरिद्र व अतिधनी न होकर समान रूप से सुख प्राप्त करें ॥१०॥

गोसंरक्षणमित्येकं, वस्त्रनिर्माणमेव च ।
कृषे. सहायकौ मुख्यौ, ग्रामोद्योगौ प्रकीर्तितौ ॥११

गोरक्षा तथा वस्त्रोत्पादन कृषि के मुख्य सहायक ग्रामोद्योग कहे गये हैं ॥११॥

एतयोर्वस्त्रनिर्माणं, सुसाध्यं सुकरं स्मृतम् ।
किञ्च तत्कालसाध्यं स्यादल्पोपकरणाश्रितम् ॥१२॥

इन दोनो मे वस्त्रोत्पादन सुगमता से करने योग्य होता है । इसके अतिरिक्त यह तत्काल सिद्ध हो सकता है और अल्प उपकरणों पर आश्रित है ॥१२॥ -

गृहेष्वेव हि तत्सिद्धिः, स्त्रीभिर्वृद्धैस्तथार्भकैः ।
न च क्लिष्टश्रमापेक्षं, न वा वृष्ट्यागमाश्रयम् ॥१३॥

घरों मे ही बच्चे बूढ़े और स्त्रियां इसे सिद्ध कर सकते है । इसके लिए कठोर परिश्रम की अपेक्षा भी नहीं होती, न ही यह वर्षा पर निर्भर है ॥१३॥

नैतद् यन्त्रप्रतिस्पर्धा-विनाशभावनोत्थितम् ।
सहायकं कृषे किञ्च, रिक्तकालोपयोगकृत् ॥१४॥

यह वस्त्रोत्पादन-व्यवसाय यन्त्र की प्रतिस्पर्धावश अथवा उसको नाश करने की भावना से प्रवृत्त नहीं हुआ । यह कृषि का सहायक है और रिक्त समय का उपयोग कराने वाला है ॥१४॥

न वा पुष्कलवित्तस्य, तेनाशा महती भवेत् ।
न धनाढ्यो भवेत् कश्चित् , सूत्रचक्रप्रयोजकः ॥१५॥

इससे पुष्कल धन-प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती । सूत-चक्र (चरखा) का चलाने वाला कभी धनाढ्य नहीं हो सकता ॥१५॥

एतेन वित्तवैषम्यं, विनश्येत् कष्टकारणम् ।
संसारे चार्थिकी शान्तिः, स्थाप्येत स्थेयसी पुनः ॥१६॥

इससे धन की विषमता नष्ट हो जाती है जो दुःखो का कारण है और संसार में स्थिर आर्थिक शान्ति स्थापित हो सकती है ॥१६॥

पुनरुद्धरणे चास्योपकारो भूयसां भवेत् ।
कोटिश. पुरुषा नार्यो, लभरेन्नुपजीविकाम् ॥१७॥

इसके पुनरुद्धार मे बहुतों का उपकार होगा । करोडों पुरुष और स्त्रिया इसके द्वारा जीविका को प्राप्त करेंगी ॥१७॥

केवलं कृषिका नैव, तक्षका लोहकारका. ।
कार्पासमार्जकाश्चैव, रजका वृत्तिमाप्नुयुः ॥१८॥

न केवल किसान लोग, बढ़ई और लोहार, धुनिये, रंगरेज़ भी जीविका प्राप्त कर सकते हैं ॥१८॥

अन्येऽल्पव्यवसायाश्च, ग्रहा ग्रहपतिं यथा ।
वसनोद्योगमाकृष्टा, उपस्थास्यन्ति सत्वरम् ॥१६॥

और भी अल्प व्यवसाय वस्त्रोद्योग से आकृष्ट होकर, इसके चारों तरफ शीघ्र ही विकसित हो जायंगे, जैसे ग्रह-पति चन्द्रमा के चतुर्दिक् ग्रह उपस्थित हो जाते हैं ॥१६॥

सूत्रचक्रस्य निह्रादः, समुत्तिष्ठन् गृहे गृहे ।
मधुरं मन्द्रसङ्गीतं, सुभगं जनयिष्यति ॥२०॥

सूत-चक्र का शब्द, घर २ मे उठता हुआ, मधुर और मृदु संगीत का सृजन करेगा ॥१०॥

कामये भारतं सर्वं, तत्सङ्गीतसुगुञ्जितम् ।
कुञ्जं मञ्जुनिदानानां, भूयः स्यान्नन्दनं वनम् ॥२१॥

मैं कामना करता हूं कि समस्त भारतवर्ष उस संगीत से गूंजता हुआ, सुन्दर एवं मधुर निनादों का पुंज एवं नन्दन-वन बने ॥२१॥

सूत्रचक्रस्वरैर्मुग्धाः, भवेयुर्ग्रामवासिनः ।
नगरस्था अपि प्रीताः, शृणुयुः गीत्तमुत्तमम् ॥२२॥

सूत-चक्र के स्वर से ग्रामवासी लोग मुग्ध हो जायं । नगरनिवासी भी प्रेम-पूर्वक इस मधुर संगीत को सुनें ॥२२॥

यज्ञार्थमेव तत्कुर्युर्दरिद्रदेवपूजनम् ।
नारायणो नराणां हि, यज्ञेन संप्रसीदति ॥२३॥

यह सब यज्ञ की भावना से दरिद्रो के ईश्वर की पूजा करें । दरिद्र-नारयण ऐसे यज्ञों से प्रसन्न होते हैं ॥२३॥

धर्मोऽयं शाश्वतः प्रोक्तो, यत्स्याद्दीनार्तिनाशनम् ।
आचरन् स्वल्पमप्यस्य, पुरुषो नावसीदति ॥२४॥

यह दीनार्तिनाशन-धर्म शाश्वत धर्म कहा गया है । इसके अल्पांश का भी आचरण करता हुआ पुरुष कभी दुःखी नहीं होता ॥२४॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां दारिद्र्यार्तिनाशनं नाम षोडशोऽध्यायः

श्रीमन्मोहन गीता अथवा अहिंसायोग में
दारिद्र्यार्तिनाशन नाम षोडश अध्याय समाप्त ।

सप्तदश अध्याय

राजेन्द्र उवाच

त्रिविधतापतप्तांस्त्वं, दीनानुद्धर्तुमिच्छसि ।
अस्पृश्या दलिताः किन्न, कृपायास्तव भाजनम् ॥१॥

राजेन्द्र ने कहा

त्रिविध सन्तापों से तप्त दीनों का आप उद्धार करना चाहते हैं । अस्पृश्य दलित लोग क्या आप की कृपा के पात्र नहीं हैं ॥१॥

अनुकम्प्यां दशां दृष्ट्वा, तेषां परमदुःखिताम् ।
हृदयं कम्पमानं मे, वाष्पार्द्रेते भृशं दृशौ ॥२॥

उनकी दयनीय तथा परम दुःखित अवस्था को देख कर मेरा हृदय कम्पित हो रहा है और आखें निरन्तर अश्रुपूर्ण हो रही हैं ॥२॥

भारतं यदि नाद्यापि, स्वातन्त्र्यमधिगच्छति ।
विदधानः पराधीनान्, परांस्तु नात्र विस्मयः ॥३॥

यदि भारत आज भी स्वाधीनता को प्राप्त नहीं कर रहा है, इसमें आश्चर्य नहीं क्योंकि वह अपने ही लोगों को पराधीन बनाए हुए हैं ॥३॥

श्रीमोहन उवाच

हन्त राजेन्द्र तथ्यं ते, कथनं सर्वथोचितम् ।
स्वदेशदलितान् वीक्ष्य, चेतो मेऽत्यन्तचिन्तितम् ॥४॥

श्री मोहन ने कहा

हे राजेन्द्र ! तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य है और उचित है । अपने देश के दलितों को देखकर मेरा चित्त अत्यन्त दुःखी है ॥४॥

अविद्याव्याधिदारिद्र्य-सन्तापैरतितापिताः ।
अनाचारैः समाजस्य, किञ्चाथ संप्रपीडिताः ॥५॥
कथं ते दलिता न स्युः, कृपाया मम भाजनम् ।
समुद्धाराय तेषां तु, प्रयतेऽहमहर्निशम् ॥६॥

अविद्या, व्याधि और दरिद्रता के सन्तापों से अति पीड़ित, समाज के अत्याचारों से सन्तप्त दलित लोग कैसे मेरी कृपा के पात्र नहीं होंगे। उन्हीं के उद्धार के लिए मैं दिन रात प्रयत्न करता हूँ ॥५.६॥

देशस्यासम्भवं मन्ये, तेषामुद्धारमन्तरा ।
स्वातन्त्र्यं भारतस्यास्य, समुत्कर्षं तथेप्सितम् ॥७॥

उनके उत्थान के बिना, देश की स्वतंत्रता को मैं असम्भव समझता हूँ। इस भारत का अभीष्ट उत्कर्ष भी उसके बिना असम्भव है ॥७॥

अस्पृश्यता महापापं, सैषा स्यात् किल्विषं महत् ।
स्वधर्ममवगच्छामि, ध्रुवं तस्या निवारणम् ॥८॥

अस्पृश्यता महापाप है। यह महान् कलङ्क है। मैं उसके निवारण को अपना निश्चित धर्म समझता हूँ ॥८॥

दलितानां तु दीनानामार्तिनाशाय सन्ततम् ।
अप्युत्स्रष्टुं निजप्राणान्, सर्वदाऽहं समुद्यतः ॥९॥

दीन दलित लोगों के दुःखनाश के लिए, मैं अपने प्राणों को त्यागने के लिए भी सदा उद्यत हूँ ॥९॥

यथाऽहमवबुध्ये स्वं, श्रौतस्मार्तं सनातनम् ।
हिन्दूधर्मं न पश्यामि, तस्मिन् सङ्कीर्णतालवम् ॥१०॥

जैसा मैं अपने सनातन, श्रुति एवं स्मृति से वर्णित हिन्दूधर्म को समझता हूँ—मैं उसमें संकीर्णता के लेश मात्र को नहीं देखता ॥१०॥

'विद्याविनयसम्पन्ने· ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ,

शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः" ॥११॥

"विद्या एव विनय से युक्त ब्राह्मण मे: गौ, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल मे विद्वान् लोग समानता की दृष्टि से देखने वाले होते है ॥११॥"

इत्येषा पावनी वाणी, श्रीमद्भगवतः स्वयम् ।

सर्वेषां प्राणिनां लोके, समत्वख्यापिनी शुभा ॥१२॥

यह भगवान् की अपनी पवित्र वाणी संसार मे सब प्राणियो के समत्व को स्थापित करने वाली है ॥१२॥

समुदायशरीरस्य, प्राणिनोऽवयवाः स्मृताः ।

गरीयस्त्वं न कस्यापि, विशेषावयवस्य तु ॥१३॥

प्राणी सामाजिक शरीर के अङ्ग कहे गए हैं । किसी विशेष अङ्ग का तो महत्व नहीं है ॥१३॥

उत्तमाङ्गमिति ख्यातं, शिरस्तु प्राकृतैर्जनैः ।

शरीरशास्त्रिभिः प्रोक्तौ, पादौ देहावलम्बकौ ॥१४॥

साधारण लोग सिर को उत्तमाङ्ग कहते हैं । परन्तु शरीरशास्त्री लोग पैरो को शरीर का अवलम्बक समझते है ॥१४॥

न कामये पुनर्जन्म, यदि जायेय कर्हिचित् ।

अस्पृश्येषु प्रियं जन्म, तद्दुःखवेदनाकृते ॥१५॥

मै पुनर्जन्म नहीं चाहता । परन्तु यदि मै कहीं पर उत्पन्न होऊं —मुझे अस्पृश्यों के घर मे उत्पन्न होना प्रिय है, जिससे मै उनका दुःख अनुभव कर सकूं ॥१५॥

अस्पृश्यता न धर्मस्य, कश्चिदंशः प्रतिश्रुतः ।

सैषा मन्ये महादोषो, ह्यन्धविश्वाससंश्रितः ॥१६॥

अस्पृश्यता धर्म का कोई अङ्ग नहीं कहा गया । यह तो महान् पाप है, और अन्ध विश्वास पर आश्रित है ॥१६॥

वेदानाञ्चान्यशास्त्राणां, नैषोऽभ्युपगमो मतः ।

उत्सृजेयं तु तं धर्म, यस्त्वस्पृश्यत्वशासकः ॥१७॥

वेदों और शास्त्रो का यह सिद्धान्त नहीं है । मैं तो उस धर्म को छोड़-दूं—जो अस्पृश्यता को उचित बतलाता है॥१७॥

अहिंसाया निषेधः स्यादस्पृश्यत्वेन जन्मतः ।

सर्वभूतात्मभावस्य व्यभिचारो भवेदथ ॥१८॥

अहिसा से जन्ममूलक अस्पृश्यता का निषेध होता है । और सर्व भूतो के अध्यात्म सम्बन्ध का भी इससे प्रतिवाद होता है ॥१८॥

मूलेऽस्य संयमो नैव, समत्वविनयात्मकः ।

अवष्टम्भोऽभिमानश्च, स्वमिथ्यागौरवोत्थितः ॥१६॥

इसके मूल में समत्व के नियम का प्रतिपादन करने वाला सयम नहीं । अपितु स्तब्धता, मिथ्या अभिमान और गौरव है ॥१६॥

उत्सवेष्वापणेष्वेव, रथ्यासु मन्दिरेषु च ।

धर्मशालासु कूपेषु, विद्यापीठेषु वेदिषु ॥२०॥

तीर्थेषु परिषत्स्वेव, जनस्थानेषु सर्वथा ।

अस्पृश्यानां प्रवेशस्या-धिकारः स्यात् समः सदा ॥२१॥

उत्सवों में, बाज़ारों में, गलियो में, मन्दिरों मे, धर्मशालाओं में, कुओ पर, विद्यालयों में, यज्ञ वेदियो पर, तीर्थों में, सभाओ में तथा अन्य सार्वजनिकस्थानो पर अस्पृश्यो के प्रवेश का पूरा अधिकार है ॥२०, २१॥

देवदर्शनपूजाया अधिकारः समस्तथा ।
विवेकं कुर्वते नैव, स्पृश्यास्पृश्येषु देवताः ॥२२॥

देवदर्शन तथा देवपूजा का अधिकार समान है । देवता स्पृश्यों और अस्पृश्यो मे विवेक नहीं करते ॥२२॥

सहस्राधिकवर्षेभ्यो, व्यवहारैरमानुषैः ।
दलिता उच्चवर्णानामधिकारैः प्रवञ्चिता ॥२३॥

हजारो वर्षों से, अमानुषिक व्यवहारो के कारण, दलित लोग उच्च वर्णों के अधिकारोंसे वञ्चित हुए २ हैं ॥२३॥

पतिताः करुणार्हास्ते, हन्त बोधन्ति नाधुना ।
निर्दयं दासतां नीताः, स्वोत्थानाभ्युदयक्रमम् ॥२४॥

वे दलित हुए २, दयनीय, बलात् दासता की अवस्था मे पहुँचा दिये गये हैं । वे अब अपने उत्थान तथा उन्नति के मार्ग को नहीं समझते ॥२४॥

मन्ये संस्कारवद्वर्णा अवर्णोत्तरदायिनः ।
त एवार्हन्त्यवर्णानां, कर्तुमुद्धारमादितः ॥२५॥

मैं समझता हूं कि सवर्ण लोग अवर्णों के प्रति उत्तरदायी हैं। उनका ही कर्तव्य हैं कि वे अवर्णों का प्रारम्भ से उद्धार करें ॥२५॥

परम्परागतानाञ्च, वृत्तीनां त्याजने न तु ।
चर्मकृन्मार्जकादीनां, समाजस्य शुभं भवेत् ॥२६॥

परम्परा से आए हुए, जीविका के कार्यों के—जैसे चमार, भङ्गी आदि के, छोड देने मे समाज का कल्याण नहीं होता ॥२६॥

यत्किञ्चिदपि कुर्वन्तः, कर्म स्वजीविकाकृते ।
अस्पृश्या गर्हणीया न, भवेयुरिति मे मतिः ॥२७॥

समाज तादृशं भूयो, दिदृक्षेऽहं प्रतिष्ठितम् ।
यस्मिंस्तु समसम्मानाः, सर्वे स्वातन्त्र्यमाप्नुयुः ॥२८॥

अपनी जीविका के लिये कोई भी काम करते हुए, अस्पृश्य लोग घृणा के पात्र नहीं होते । ऐसी मेरी सम्मति है ॥२७॥

मैं ऐसे समाज को स्थापित हुआ देखना चाहता हूँ, जिसमे सब समान प्रतिष्ठा को प्राप्त करके, स्वाधीनता पूर्वक जीवन व्यतीत करे ॥२८॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायामस्पृश्यार्ति-
नाशनं नाम सप्तदशोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग में अस्पृश्यार्तिनिवारण
नाम सप्तदश अध्याय समाप्त ।

अष्टादश अध्याय

श्री राजेन्द्र उवाच

समाजं कीदृशं देव, भूयो निर्मातुमिच्छसि ।
जिज्ञासेऽहं समाजस्य, योजनां ते चिकीर्षिताम् ॥१॥

श्री राजेन्द्र ने कहा

हे देव ! आप कैसा समाज निर्माण करना चाहते हैं ? मै आपके समाज की योजना को जानना चाहता हूँ ॥१॥

रामराज्यमिति ख्यातं, समाजं यं त्वमिच्छसि ।
स्वरूपं कीदृशं तस्य, कस्तस्याधार उत्तमः ॥२॥

रामराज्य नाम से प्रसिद्ध, जिस समाज को आप बनाना चाहते हैं—उसका स्वरूप कैसा है और उसका उत्तम आधार क्या है ? ॥२॥

श्री मोहन उवाच

अहिंसा मे समाजस्य, भवेदाधार उत्तमः ।
अन्ताराष्ट्रव्यवस्थायाः, राष्ट्रियान्तर्व्यवस्थितेः ॥३॥

श्री मोहन ने कहा

अहिंसा मेरे समाज का उत्तम आधार है । यही राष्ट्र के अन्दर तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का आधार है ॥३॥

राष्ट्ररक्षाकृते नैवावश्यकं सैनिकं बलम् ।
आयुधान्यपि भूयांसि, मन्ये व्यर्थानि सर्वथा ॥४॥

राष्ट्र की रक्षा के लिए, सैनिक शक्ति की आवश्यकता नहीं । बहुत बड़े २ शस्त्र-अस्त्र भी, सब मैं व्यर्थ समझता हूं ॥४॥

संग्रामाः प्रशमिष्यन्ति, समाजे तु निरायुधे।
निरस्त्रा न निरस्त्रेषु, प्रहरन्ति कदाचन ॥५॥

निःशस्त्र समाज में युद्ध शान्त होजायँगे। निःशस्त्र लोग निःशस्त्रों पर कभी आक्रमण नहीं करते ॥५॥

अवस्कन्दन्निरस्त्रेषु, त्वाततायी भवेन्नरः।
तस्याप्यहिंसया श्रेयान्, वधो न प्रतिहिंसया ॥६॥

निःशस्त्र पर आक्रमण करता हुआ व्यक्ति आततायी कहलाता है। उसका भी अहिंसा से वध करना उचित है न कि प्रतिहिंसा से ॥६॥

नृशंसस्य नृशंसत्वं शक्यं हन्तुमहिंसया।
स्नेहाग्नौ गलति ग्रावा, वज्रस्य हृदयं तथा ॥७॥

नृशंस आततायी की नृशंसता अहिंसा द्वारा नष्ट की जा सकती है। स्नेह की अग्नि में पत्थर भी गल जाता है। और वज्र का हृदय भी ॥७॥

अन्तर्जातीयसंघर्षा अन्योन्यद्वेषसंश्रिताः।
अन्योन्यसंशयैर्जाताः, वैमनस्यसमुत्थिताः ॥८॥

अन्तर्जातीय युद्ध, परस्पर द्वेष पर आश्रित हैं, परस्पर सन्देह के कारण उत्पन्न होते हैं, और वैमनस्य की अग्नि से प्रज्वलित होते हैं ॥८॥

एतेषामुपसंहारो, न भवेज्जातु हिंसया।
समिद्भिर्जायते तेजो-भूयस्त्वं जातवेदसः ॥९॥

इनकी समाप्ति हिंसा से कभी नहीं हो सकती। ईन्धन से तो अग्नि की प्रचण्डता ही बढ़ती है ॥९॥

निरस्त्रीकरणं सर्व-देशानां शान्तिसाधनम्।
निरिध्मत्वं समिद्धाग्नेर्यथा शमनसाधनम् ॥१०॥

सब देशों का निःशस्त्र कर देना ही शान्ति का साधन है। जैसे प्रज्वलित अग्नि का इन्धनरहित कर देना शान्ति का साधन होता है ॥१०॥

तथैव सैनिकीं शिक्षां, मन्ये नूनं निरर्थिकाम् ।
न ह्यन्योन्यविघातस्य, शिक्षा कल्याणिनी भवेत् ॥११॥

इसी तरह, मैं सैनिक शिक्षा को सर्वथा निरर्थक समझता हूं। एक दूसरे को मारने की विद्या कभी कल्याणकारिणी नहीं हो सकती ॥११॥

अहिंसां द्रष्टुमिच्छामि, सर्वराष्ट्रैरुरीकृताम् ।
नीतिं कलहनिर्णेत्रीं, प्रणेत्रीं विश्वसम्पदाम् ॥१२॥

मैं अहिंसा को, सब राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत किया हुआ, देखना चाहता हूं। सब को अन्तर्जातीय कलहों का निर्णय करने वाली तथा विश्व शान्ति का आधार भूत सिद्धान्त मानता हूं ॥१२॥

प्रतिदेशं स्वराज्यं च, कामये संप्रतिष्ठितम् ।
स्वशासनाधिकारः स्यात्, सर्वेषां राष्ट्रवासिनाम् ॥१३॥

प्रत्येक देश में, मैं स्वराज्य को स्थापित हुआ देखना चाहता हूं। प्रत्येक राष्ट्र के निवासियों का अधिकार है कि वे अपना शासन स्वयं करें ॥१३॥

न जातु जगति श्रेयः, स्यादिह परशासनम् ।
परसाम्राज्यलिप्सा हि, संसारयुद्धकारणम् ॥१४॥

संसार में दूसरे का शासन कभी श्रेयस्कर नहीं होता। साम्राज्यवाद की भावना ही संसार के युद्धों का मूल कारण है ॥१४॥

सर्वं राष्ट्रं स्वदेशस्थं, स्वस्वप्रकृतिसंश्रितम् ।
स्वगृहस्य व्यवस्थां तु, स्वयं कुर्यादबाधितम् ॥१५॥

प्रत्येक राष्ट्र अपने २ देश मे स्थित हुआ, अपनी २ जनता की सहमति से अपने घर की अवाधित रूप से व्यवस्था करे ॥१५॥

जाने राष्ट्रव्यवस्थां तां, शुभां परमशोभनाम् ।
यस्यां तु जनतायाः स्याद्, भूयः कल्याणसाधनम् ॥१६॥

में उस राष्ट्रव्यवस्था को अच्छा समझता हूं, जिस मे जनता का बहुत कल्याण हो सकता हो ॥१६॥

न चाहमभिनन्दामि, शासनं त्वेकतन्त्रकम् ।
एकसत्तात्मके राज्ये, प्रजाः स्युः परितन्त्रिताः ॥१७॥

मै एक सत्तात्मक शासन प्रणाली को उत्तम नहीं मानता । एक तन्त्र शासन मे प्रजा परतन्त्र हो जाती है ॥१७॥

प्रजातन्त्रप्रणाली स्याज्जनसामान्यसम्मता ।
स्वतन्त्राः स्युःप्रजाः सर्वाः,यस्यामात्मनियन्त्रिताः॥१८॥

प्रजातन्त्र प्रणाली मे जन-साधारण की सहमति से शासन होता है। उसमें प्रजा स्वतन्त्र होती है और आत्म-नियन्त्रण से रहती है ॥१८॥

तदादर्शस्वराज्यं तु, रामराज्यं मतं मम ।
यस्मिन्न्यायस्य धर्मस्य, प्रेम्णश्च शासनं भवेत् ॥१९॥

वह आदर्श स्वराज्य ही रामराज्य है—जिसमें न्याय, धर्म और प्रेम का शासन होता है ॥१९॥

रामराज्ये न सम्पत्तिरगणितैकतो भवेत् ।
परतोऽकिञ्चनत्वस्य दृश्यं कारुणिकं न च ॥२०॥

रामराज्य में, एक तरफ अगणित सम्पत्ति नहीं होती और दूसरी तरफ अकिञ्चनता का कारुणिक दृश्य नहीं होता ॥२०॥

न तस्मिंस्तु क्षुधार्तः स्यान्न कश्चिद् व्याधिपीडितः।

नैवाविद्यातमोमग्नो, रामराज्ये सुशासिते ॥२१॥

उस में कोई भूखा नहीं होता, न कोई व्याधि से पीड़ित। न ही सुशासित रामराज्य में कोई अविद्यान्धकार मे मग्न होता है ॥२१॥

पशुवलप्रयोगश्च, तस्मिन्नत्यन्तवर्जितः।

स्यात् प्रीत्यां सहयोगे च, शासनस्य समाश्रयः ॥२२॥

उसमे पशुवल का प्रयोग अत्यन्त वर्जित होता है। रामराज्य में शासन का आधार प्रेम एवं सहयोग होता है ॥२२॥

रामराज्येऽल्पजातीनां, न जात्वभिभवो भवेत्।

रक्षणं महतीभिः स्यात्तद्धितानां तु सर्वदा ॥२३॥

रामराज्य मे अल्प-जातियों के साथ कभी अन्याय नहीं होता। बड़ी जातियो के साथ उनके हित की भी सदा समान रक्षा होती है ॥२३॥

प्रजाया. प्रजया तस्मिन्, प्रजायै शासनं भवेत्।

अशेषजनकल्याणं, तदुद्देशः शुभो भवेत् ॥२४॥

प्रजा का प्रजा द्वारा, उसमें प्रजा के लिए शासन होता है। समस्त जनता का कल्याण उसका शुभ उद्देश्य होता है ॥२४॥

तद्राष्ट्रस्य महाध्यक्षो, विज्ञातो राष्ट्रनायकः।

नृपतिर्वा प्रजायाः स्यात्, यथार्थो मुख्यसेवकः ॥२५॥

उस राष्ट्र का सब से बड़ा अध्यक्ष राष्ट्रनायक कहा जाता है—अथवा वह प्रजा का राजा होता है। वह वास्तव में सब से प्रमुख, प्रजा का सेवक होता है ॥२५॥

स कल्याणमतिर्नित्यं, जनकल्याणचिन्तकः।

परार्थसाधने लग्नः सदा स्वार्थपराङ्मुखः ॥२६॥

वह कल्याणबुद्धि सदा जनता के कल्याण की चिन्ता करता है, परार्थ साधन मे संलग्न रहता है और स्वार्थ से सदा विमुख रहता है ॥२६॥

प्रजासु निवसंस्तासां, सुखदुःखानि वेदयन्।
निजामोदप्रमोदेषु, वित्तं व्यर्थंथते न सः ॥२७॥

प्रजाओ में रहता हुआ, वह उनके सुख-दुःख को जानता हुआ, अपने आनंद विलास में धन को व्यर्थ व्यय नहीं करता ॥२७॥

न च पीडयते लोकानधिकारबलैर्वृथा।
भिक्षुकश्चापि सन्नास्ते, कामं राष्ट्रस्य नायकः ॥२८॥

वह अपने अधिकार-बल से व्यर्थ लोगों को पीडित नहीं करता। राष्ट्रनायक होता हुआ भी भिक्षुक बन कर रहता है ॥२८॥

रामराज्यसमाजे न शास्तुर्दण्डभयं भवेत्।
स्वयं न्यायेन धर्मेण, वर्तन्ते हि प्रजाजनाः ॥२९॥

रामराज्य के समाज में शासक के दण्ड का भय नहीं होता। प्रजाजन उसमें स्वयं न्याय एवं धर्म से रहते हैं ॥२९॥

अहिंसके समाजेऽस्मिन्नाधिकारप्रिया नराः।
सर्वे धर्मं विदित्वा स्वमनुतिष्ठन्ति तं सदा ॥३०॥

इस अहिंसात्मक समाज में मनुष्य अधिकारप्रिय नहीं होते। सब अपने २ कर्तव्य का ज्ञान करके, उसका सदा अनुष्ठान करते हैं ॥३०॥

न तस्मिन्नलसः कश्चिद्, भवेद्वा न निरुद्यमः।
स्वप्रस्वेदार्जितां वृत्तिं, भुञ्जते श्रमिणो जनाः ॥३१॥

उसमें कोई आलसी अथवा निरुद्यमी नहीं होता। सब मनुष्य परिश्रम से अपने पसीने की गाढ़ी कमाई का ही भोग करते हैं ॥३१॥

प्राचुर्यं चापि सम्पत्तेः, न स्यादालस्यकारणम् ।
नश्येदैश्वर्यवैषम्यं, रामराज्ये प्रतिष्ठिते ॥३२॥

धन सम्पत्ति की प्रचुरता आलस्य का कारण नहीं होती । रामराज्य के स्थापित होने पर सम्पत्ति की विषमता नष्ट हो जाती है ॥३२॥

स्वकर्मणां फल सर्वे, लभन्ते न्यायसम्मतम् ।
कार्याभावाच्च नैष्कर्म्यं, नहि कश्चित्तु गच्छति ॥३३॥

सब अपने २ कर्मों द्वारा न्यायानुकूल फल प्राप्त करते हैं । कोई व्यक्ति काम न होने के कारण अकर्मण्य होकर नहीं रहता ॥३३॥

सर्वे वर्णास्तथा वर्गाः, समाजा जातयोऽथ च ।
समभावेन निर्वैराः, निवसन्ति परस्परम् ॥३४॥

सब वर्ण तथा वर्ग, समाज अथवा जातियां, निर्वैर होकर परस्पर समानभाव से रहती हैं ॥३४॥

न धार्मिकविरोधानां, रामराज्ये समुद्भवः ।
नार्थिकप्रतिहिंसायाः, जघन्यं स्यात् प्रदर्शनम् ॥३५॥

रामराज्य में धार्मिक कलह उत्पन्न नहीं होते । आर्थिक प्रति-स्पर्धाओं का कुत्सित प्रदर्शन भी उससे नहीं होता ॥३५॥

किञ्चोच्चावचवर्णानां, भवेत् सम्यक् समन्वयः ।
तथैव वर्णधर्माणां, सामञ्जस्यं च मञ्जुलम् ॥३६॥

और भिन्न २ वर्णों का उसमें सम्यक् समन्वय होता है । वर्ण धर्मों का भी सुन्दर सामञ्जस्य होता है ॥३६॥

वर्णधर्ममहं जाने, स्वस्ववृत्तिप्रवर्तनम् ।
यच्च नीत्यविरुद्धं स्यात्, स्वधर्मभावनोत्थितम् ॥३७॥

मैं वर्णधर्म, अपने २ कार्य में प्रवृत्त होना समझता हूं—जो कार्य नीति के अनुकूल हो तथा अपने २ धर्म की भावना से प्रेरित हुआ हो ॥३७॥

धर्मोऽयं नाधिकारोऽस्ति, स चानुष्ठानसुन्दरः ।
उदरपूरणं तेन, भवेद् धर्मेण वा न वा ॥३८॥

यह वर्णधर्म धर्म है, अधिकार नहीं। इस की सुन्दरता आचरण में हैं। इस धर्म से उदर पूर्ति हो या न हो।

अस्यां धर्मव्यवस्थायां, ब्राह्मणो ब्रह्मविद् भवेत् ।
प्रसारे ब्रह्मविद्यायाः, यत्नवानात्मसंयतः ॥३९॥

इस धर्म व्यवस्था में ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता होता है। वह आत्मसंयमी होकर ब्रह्मविद्या के प्रसार में यत्नवान् हो ॥३९॥

प्रजायाः पालनं कुर्युः, क्षत्रिया राष्ट्ररक्षकाः ।
स तेषां पावनो धर्मो, जीविका नैव केवलम् ॥४०॥

क्षत्रिय राष्ट्ररक्षक बने हुए, प्रजा का पालन करें। वह उनका पवित्र धर्म है—केवल जीविका नहीं ॥४०॥

वैश्याः कुर्युः कृषिं पाशु-पाल्यं वाणिज्यमेव च ।
प्रजाकल्याणनिष्पत्त्यै, न वित्तसञ्चिचीषया ॥४१॥

वैश्य, कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य को सम्पन्न करें। प्रजा के कल्याण का साधन करने के लिए, न कि धन-सञ्चय की इच्छा से ॥४१॥

शूद्रा अपि समाजस्य, कल्याणं परिचर्यया ।
आचरेयुः स्वभावेन, सेवाधर्मविशारदाः ॥४२॥

शूद्र भी सेवा द्वारा समाज का कल्याण करे। वे स्वभाव से ही सेवाधर्म मे चतुर होते हैं ॥४२॥

न नश्येयुर्द्रढीयांसः, पूर्वजन्माशयोत्कराः ।
स्वां वृत्तिमनुवर्तेरन्, वर्णाः संस्कारसंस्कृताः ॥४३॥

पूर्वजन्म के संस्कार बहुत दृढ़ होते हैं और नष्ट नहीं होते। सब वर्ण संस्कारो मे सुसंस्कृत हुए २ अपनी २ वृत्ति का पालन करें ॥४३॥

ऋषिभिः पूर्वजैः प्रोक्तो, जन्मना वर्णनिर्णयः ।
प्रोक्ता वर्णान्तरप्राप्तिस्तीव्रैरपि च कर्मभि ॥४४॥

पूर्वज ऋषियो ने वर्ण का निश्चय जन्ममूलक कहा है। परन्तु तीव्र कर्मों द्वारा अन्य वर्ण की प्राप्ति का विधान भी उन्होंने किया है ॥४४॥

न च कस्यापि वर्णस्य, वैशिष्ट्यमाप्तसम्मतम् ।
सर्वे वर्णा द्विजाः शूद्राः, स्वस्वधर्मरताः समाः ॥४५॥

किसी वर्ण की विशिष्टता आप्त लोगो द्वारा स्वीकृत नहीं है। सब वर्ण—ब्राह्मण वा शूद्र, अपने २ धर्म पालन मे लगे हुए—समान हैं ॥४५॥

स्वामित्वं न च कस्यापि, सर्वे समाजसेवकाः ।
वर्णाः श्रमविभागार्थं, सृष्टा विश्वसृजा पुरा ॥४६॥

किसी वर्ण विशेष का स्वामित्व नहीं है। सब समाज के सेवक हैं। प्रजापति परमात्मा ने पहले सब वर्णों को श्रम विभाग की दृष्टि से उत्पन्न किया ॥४६॥

न वर्गाणामिवैतेषां, विनाशो धर्मसम्मतः ।
वर्णानां समताधर्मो, वैषम्यस्य नियामक ॥४७॥

इन वर्णों का—वर्गों की तरह—नाश कर देना धर्मानुकूल नहीं। वर्णों का समता सिद्धान्त विषमता को नियमित करने वाला है ॥४७॥

किञ्च प्रोक्ता इमे वर्णा अन्योन्यस्य सुपूरकाः ।
अपूर्णोऽन्यतमो ह्येषामितरेण विवर्जितः ॥४८॥

और ये सब वर्ण एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं । एक, दूसरे से रहित, अपूर्ण है ॥४८॥

सार्वजनिकसम्पत्तेः, वर्णाः संरक्षकाः स्मृताः ।
परस्परोपकारार्थं, वित्तं कस्यापि न स्वकम् ॥४९॥

वर्ण सार्वजनिक सम्पत्ति के रक्षा करने वाले कहे गए हैं । धन परस्पर उपकार के लिए है । वह किसी का अपना नहीं है ॥४९॥

शूद्रा अकिञ्चनाः सन्तः, द्विजैर्दासत्वमापिताः ।
मन्येऽनेनैव पापेन, स्वयं ते दासतां गताः ॥५०॥

शूद्र, निर्धन होने के कारण, अन्य वर्णों द्वारा दास बना दिए गए हैं । मैं समझता हूं, इसी पाप के कारण, वे स्वयं भी दासता को प्राप्त हुए हैं ॥५०॥

साम्यवादिसमाजे मे, धर्ममूले सुशासिते ।
धनोच्चावचभेदानां, भवेदत्यन्तसंक्षयः ॥५१॥

मेरे साम्यवादी; धर्ममूलक, सुशासित समाज मे धन के ऊंच नीच भेदों का अत्यन्त विनाश हो जाता है ॥५१॥

मम वर्णाः प्रियाः सर्वे, प्रेयांसो धर्मसुस्थिराः ।
पीडिता अपि धर्मस्थाः, शूद्राः प्रियतमा मम ॥५२॥

मुझे सब वर्ण प्रिय हैं । वे अधिक प्रिय हैं, जो अपने धर्म में दृढ़ हैं । पीडित होते हुए भी धर्म में स्थिर, शूद्र मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं ॥५२॥

वर्णधर्मसमुद्धारं, दिदृक्षेऽहं नवे युगे ।
अपि चाश्रमधर्माणामुद्धारं कामये पुनः ॥५३॥

मै इस नवीन युग मे वर्ण-धर्म का उद्धार देखना चाहता हूँ और आश्रम-धर्म के उद्धार भी मैं, फिर कामना करता हूँ ॥५३॥

ब्रह्मचर्याश्रमस्तेषां, वरिष्ठः संयमात्मकः ।
गृहस्थस्य वनस्थस्य, संन्यासस्य दृढाश्रयः ॥५४॥

उनमे ब्रह्मचर्य आश्रम सबसे उत्तम है । यह आत्मसंयम पर आश्रित है । गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास का यह दृढ़ आधार माना गया है ॥५४॥

अष्टादशसमाः कन्याः, युवानः पञ्चविंशतिम् ।
वर्षाणि ब्रह्मचर्येण, यापयेयुः स्वजीवनम् ॥५५॥

अठारह वर्ष तक कन्या तथा पच्चीस वर्ष तक युवक, ब्रह्मचर्य-पूर्वक अपने जीवन को व्यतीत करें ॥५५॥

गृहाश्रमप्रवेशेऽपि, संयमो भूषणं स्मृतम् ।
सन्तानतन्त्वविच्छेदो, विवाहस्य प्रयोजनम् ॥५६॥

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद भी, संयम भूषण कहा गया है । विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति द्वारा वंशपरम्परा को जारी रखना है ॥५५॥

विवाहो धर्मसम्बन्धः, पशुप्रेम न केवलम् ।
धर्म्यं परिणयं जाने, सात्विकप्रणयाश्रितम् ॥५७॥

विवाह धार्मिक सम्बन्ध है-केवल पशुप्रेम नही । धर्म-परिणय सात्विक प्रेम पर आश्रित होता है ॥५७॥

गृहेषु पुरुषस्त्रीणामधिकारः समो मतः ।
नार्यस्तु पशवो नैव, नराणां भोगसाधनम् ॥५८॥

घर में पुरुष तथा स्त्री का अधिकार समान है ! स्त्रियां पशु नहीं है-मनुष्य के भोग का साधनमात्र नहीं है ॥५८॥ .

अबला नापि नार्यः स्युर्दयापात्राणि केवलम् ।
सबला शक्तिरूपिण्यो, देव्यस्ता दिव्यतेजसः ॥५९॥

स्त्रियां अबला नहीं हैं—जो केवल दया की पात्र हों । वे तो सबला, शक्ति की प्रतिमा, दिव्य तेजस्विनी देवियां हैं ॥५८॥

संप्राप्तवयसां पुंसां, यत्स्वातन्त्र्यमुदाहृतम् ।
मर्यादितं तदेव स्यात्. स्त्रीणामप्युचितं किल ॥६०॥

वयस्क पुरुषों के लिए, जो स्वतन्त्रता उचित मानी गई है—वही मर्यादित रूप में स्त्रियों के लिए भी उचित मानी गई है ॥६०॥

न दोषो भ्रमणे तासां, न वा वृत्तेरुपार्जने ।
न सभानां सदस्यत्वे, न लोकहितकर्मणि ॥६१॥

उनके भ्रमण में तथा जीविकोपार्जन मे, सभा का सदस्य बनने मे तथा अन्य लोकहित के कार्य करने में कोई दोष नहीं है ॥६१॥

परुषैः पुरुषैः शश्वत्, स्त्रीजातेरवधीरणम् ।
नृशंसशासनं मन्ये, देशाधःपातकारणम् ॥६२॥

निर्दय पुरुषों द्वारा स्त्रीजाति का निरन्तर निरादर करना तथा नृशंस शासन करना ही—मैं देश के अधःपात का कारण समझता हूँ ॥६२॥

रामराज्यसमाजे मे, नारीणां न तिरस्क्रिया ।
विधवानामनाथानां, न स्यात् करुणरोदनम ॥६३॥

मेरे रामराज्य-समाज में स्त्रियो का तिरस्कार नहीं होता। उस में विधवाओ और अनाथो का करुण क्रन्दन भी नहीं होता ॥६३॥

अहिंसाव्रतिनः सर्वे, दयाधर्मे तु दीक्षिताः।
प्रेम्णा संप्लावयिष्यन्ति, समस्तं वसुधातलम् ॥६४॥

सब अहिंसाव्रती होकर, दयाधर्म मे दीक्षित हुए २, प्रेम से समस्त पृथ्वी को आप्लावित कर देंगे ॥६४॥

स्त्रियो बालास्तथा वृद्धा असहायाश्च दुर्विधाः।
सर्वे मम समाजस्य, कृपापात्राणि सर्वथा ॥६५॥

स्त्रिया, बच्चे, बूढ़े, निस्सहाय तथा दीन व्यक्ति, मेरे समाज मे कृपा के पात्र होते हैं ॥६५॥

नैवान्यायो न वाऽधर्मो, न स्वार्थो न नृशंसता।
न चान्यधनगर्धा स्यात्, समाजे मच्चिकीर्षिते ॥६६॥

मेरे अभीष्ट समाज मे न अन्याय, न अधर्म, न स्वार्थ, न अत्याचार अथवा दूसरे के धन को छीनने की भावना होती है ॥६६॥

न मे स्तेनः समाजे स्यान्न कदर्यो न मद्यपः।
न दरिद्रो न चाविद्वान्, न व्याधिक्लेशपीडितः ॥६७॥

मेरे समाज मे न चोर, न कृपण, न शराबी, न निर्धन, न अशिक्षित और न कोई व्याधि के सन्ताप से पीड़ित होता है ॥६७॥

सर्वे स्युः सुखिनस्तुष्टाः, नीरोगा विद्यया युताः।
रामराज्यसमाजे मे, प्रमोदन्तां प्रजाजनाः ॥६८॥

रामराज्य-समाज मे सब सुखी, सन्तुष्ट, नीरोग तथा विद्या से युक्त होकर, प्रजाजन आनन्द से रहते हैं ॥६८॥

तादृश सर्वसम्पन्नं, समाजं भारते मम ।
स्थापितं द्रष्टुमिच्छामि, स्वराज्यस्थापनाश्रितम् ॥६६॥

ऐसे सर्वसम्पन्न समाज को अपने भारत में स्वराज्य की स्थापना करके, प्रतिष्ठित हुआ मैं देखना चाहता हूँ ॥६६॥

तदहं तत्स्वराज्यस्य, स्थापनायै दिवानिशम् ।
प्रयते प्रयतेनाहमहिंसायोगवर्त्मना ॥७०॥

मैं उसी स्वराज्य की स्थापना के लिए, दिन रात, पवित्र अहिंसा मार्ग से प्रयत्न कर रहा हूँ ॥७०॥

अतः स्वाधीनतायुद्धं, कुर्वाणोऽस्मि निरन्तरम् ।
एतद्द्वारेण संसार-कल्याणं कर्तुमिच्छुकः ॥७१॥

इस लिए, स्वाधीनता के युद्ध को निरन्तर कर रहा हूँ । इसी के द्वारा संसार के भी कल्याण को करना चाहता हूं ॥७१॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं सम्यक्, त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानमोहस्ते, राजेन्द्र नष्टतां गतः ॥७२॥

हे राजेन्द्र ! क्या तुमने एकाग्र चित्त से, अच्छी तरह, यह सब सुन लिया ? क्या तुम्हारा अज्ञान का मोह नष्ट हो गया ? ॥७२॥

राजेन्द्र उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादात्तु मोहन ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः, करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

राजेन्द्र ने कहा

मेरा मोह नष्ट हुआ, मुझे आपकी कृपा से ज्ञान प्राप्त हुआ है । हे मोहन ! मैं अब सन्देह से रहित होकर आपकी आज्ञा को करने के लिए उद्यत खड़ा हूँ ॥७३॥

दीनबन्धुरुवाच

इत्येतां पावनीं वाणीं, मोहनस्य महात्मनः ।
गुरुदेवाहमश्रौषं, पुण्यां कल्याणिनीं शुभाम् ॥७४॥

हे गुरुदेव ! मैंने महात्मा मोहन की इस पवित्र वाणी का श्रवण किया । यह पुण्यकारिणी. कल्याणिनी एवं शुभ वाणी है ॥७४॥

प्रसादाच्छ्रुतवानेतदिन्द्रस्य गुह्यमुत्तमम् ।
अहिंसायोगिनोऽहिंसायोगं हि मोहनात् स्वयम् ॥७५॥

मैंने इन्द्र के प्रसाद से अहिंसायोगी मोहन के अहिंसायोग के इस उत्तम गुह्य का श्रवण किया है ॥७५॥

संस्मृत्य गुरुदेवाहं, संवादमिममद्भुतम् ।
मुहुर्हृष्यामि राजेन्द्र-मोहनयोः परस्परम् ॥७५॥

हे गुरुदेव ! मैं मोहन और राजेन्द्र के परस्पर इस अद्भुत संवाद को स्मरण करके पुनः आनंदित हो रहा हूँ ॥७६॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य, रूपमध्यात्मसुन्दरम् ।
मोहनं मोहनस्याहं, संहृष्यामि पुनः पुनः ॥७७॥

और मोहन के उस मनोमोहक आध्यात्मिक स्वरूप का स्मरण कर के फिर २ उल्लास से पूर्ण होता हूँ ॥७७

मोहनः सत्यसत्वस्थः, सत्यं विजयते तमाम् ।
नायको मोहनो यत्र, विजयस्तत्र वै ध्रुवः ॥७८॥

मोहन सत्य पर स्थित है । सत्य की सदा विजय होती है । जहा मोहन नायक हो वहा विजय निश्चित है ॥७८॥

इति श्रीमन्मोहनगीतायामहिंसायोगाख्यायां रामराज्यसमाज-निर्माणं नामाष्टादशोऽध्यायः

श्रीमन्मोहनगीता अथवा अहिंसायोग मे रामराज्य-समाज-निर्माण नाम, अष्टादश-अध्याय समाप्त ।